Study Learning Material (SLM)

of

Bachelor of Art Hons (Hindi)

Centre for Distance and Online Education

TEERTHANKER MAHAVEER UNIVERSITY

N.H.-9, Delhi Road, Moradabad, Uttar Pradesh244001

Website: www.tmu.ac.in

Semester-1

Bachelor of Art Hons (Hindi)

EXPERT COMMITTEE

Dr.Omprakash Singh,
Assistant Professor
VARDHMAN COLLEGE BIJNOR, U.P.

Dr. Poonam Chauhan
Assistant Professor
S.B.D. GIRLS DEGREE COLLEGE DHAMPUR, U.P.

COURSE COORDINATOR

Dr. Poonam Chauhan
Assistant Professor
Faculty of Education, Teerthanker Mahaveer University. (TMU)

BLOCK PREPARATION

Unit Writers	Assisting & Proof Reading	
Dr. Poonam Chauhan,	**Dr. M. P. Singh**	**Dr. Vinod Kumar Jain**
Assistant Professor	**Professor**	**Associate Professor**
TMU	**TMU**	**TMU**

Secretarial Assistance and Composed By :

Mr. Deepak Malik
Assistant Registrar,
Faculty of Education, TMU

COURSE INTRODUCTION

The Constitutional Development in India course, worth four credits and comprising five blocks, aims to enhance your understanding of political concepts and provide knowledge about various states.

This course adopts a cross-curricular approach to boost both your political and academic knowledge, making it easier and more efficient for you to comprehend study materials in other subjects.

The course is divided into five blocks of different units. The Block titles are as follows:

Block 1 **- आदिकाल की पृष्ठभूमि**

Block 2 **- आदिकाल का नामकरण / समस्याएँ**

Block 3 **- आदिकाल की प्रमुख काव्य प्रवृत्तियाँ**

Block 4 **- आदिकाल के कवि और रचनाएं**

Block 5 **-प्रमुख रासो काव्य**

Each Unit is divided into sections and sub-sections. We begin each Unit with a statement of objectives to indicate what we expect you to achieve through the Unit. There are several activities in each section of the Unit which you must attempt. You should then check your answers with those given by us at the end of the Unit.

There are assignments based on this course. After completes the assignments, submitted to the CDOE, TMU. The assignment is evaluated and returned to you with comments which will help you to improve your proficiency in political Science.

We hope you enjoy the Course. Please attempt all the activities and exercises given in the Units.

Acknowledgements:

The material (pictures and passages) we have used is purely for educational purposes.

Every effort has been made to trace the copyright holders of material reproduced in this

book. Should any infringement have occurred, the publishers and editors apologize and will be pleased to make the necessary corrections in future editions of this book.

BLOCK INTRODUCTION

Block 1 (आदिकाल की पृष्ठभूमि) has four Units. Under this theme we have covered the following topics:

Unit 1: आदिकाल प्रस्तावना

Unit 2 : आदिकाल का स्वरूप और विकास

Unit 3 : परिस्थितियाँ: अर्थ और स्वरूप

Unit 4 : **आदिकालीन साहित्य की पृष्ठभूमि**

आदिकाल की प्रस्तावना भारतीय साहित्य के आरंभिक चरण की विशेषताओं को स्पष्ट करती है, जिसमें साहित्यिक स्वरूप और विकास की महत्वपूर्ण बारीकियाँ शामिल हैं। आदिकाल का स्वरूप प्राचीन संस्कृतियों और धार्मिक परंपराओं से प्रभावित था, जो उसकी विशिष्टता को दर्शाता है। इस काल की परिस्थितियाँ, अर्थ और स्वरूप साहित्यिक रचनाओं को समझने में सहायक होते हैं। आदिकालीन साहित्य की पृष्ठभूमि उस समय की सामाजिक और सांस्कृतिक संरचनाओं को उजागर करती है, जो साहित्य के विकास को प्रभावित करती हैं।

We suggest you do all the activities in the Units, even those which you find relatively easy. This will reinforce your earlier learning.

DBAH104-आदिकाल

BLOCK 1

आदिकाल की पृष्ठभूमि

Unit-1:

इकाई की रूपरेखाः

उद्देश्य-

• आदिकाल के स्वरूप एंव महत्व की चर्चा करेंगे।

• परिस्थितियों के अर्थ एंव उनकी भूमिका का महत्व बता सकेंगे।

• आदिकालीन राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, एंव आर्थिक तथा साहित्यिक परिस्थितियों का चर्चा कर सकेंगे

1 प्रस्तावना

2 आदिकाल का स्वरूप और विकास

3 परिस्थितियाँ: अर्थ और स्वरूप

4 आदिकालीन साहित्य की पृष्ठभूमिः

- राजनैतिक परिस्थितियाँ
- सामाजिक परिस्थितियाँ

- धार्मिक परिस्थितियाँ

5 सारांश

6 कीवर्ड्स (संकेत शब्द)

7 अभ्यास (लघु उत्तरीयमूलक प्रश्न)

8 दीर्घ उत्तरमूलक प्रश्न

9 संदर्भ ग्रंथ सूची

1 <u>प्रस्तावना-</u>

आदिकाल के साहित्य को समझने से पूर्व यह आवश्यक है कि हम आदिकालीन साहित्य के पृष्ठभूमि को समझे। कवि अथवा लेखक अपने साहित्य सृजन से परिवेश एवं स्थितियों को निर्मित परिवर्तित तो करता ही है, साथ ही अपने समसामयिक परिस्थितियों से प्रभावित भी होता है। हिंदी साहित्य के इतिहास का आरंभ जिस काल से होता है वह 'आदिकाल' के नाम से जाना जाता है। इस काल के लिए अन्य कई नाम भी सुझाए गए हैं यथा- चारण काल, प्रारंभिक काल, वीरगाथा काल और संधि काल आदि। आदिकाल के नामकरण के संदर्भ में अगली इकाई में बिस्तृत चर्चा की जाएगी। हिंदी साहित्य की इस आरंभिक समय को आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने आदिकाल कहा और प्रवृत्ति के आधार पर 'वीरगाथा काल' कहा। परंतु आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने प्रवृत्ति के आधार पर भी इस काल को 'आदिकाल' की संज्ञा दी। यही नाम विद्वानों के बीच लोकप्रिय हुआ, क्योंकि तत्कालीन साहित्यिक चेतना के विविध स्वरूप इस नाम के अंतर्गत आ सकते हैं। प्रस्तुत इकाई में हम आदिकालीन साहित्य के निर्माण में प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रूप से सक्रिय रहने वाली महत्वपूर्ण परिस्थितियों का अध्ययन करेंगे। आदिकालीन साहित्य में श्रृंगार, भक्ति, वीर तथा ऐतिहासिक अलौकिक धार्मिक एवं सामाजिक आदि कई प्रवृतियां मिलती है। इन सभी प्रवृत्तियों के निर्माण और विकास में तत्कालीन परिवेश की परिस्थितियों ने तरह-तरह से अपना योगदान दिया है। ये परिस्थितियां कभी साहित्य को प्रभावित करते हुए उसके विकास दिशा को प्रभावित करती रही है तो कभी साहित्य से प्रेरणा ग्रहण कर अपना स्वरूप परिवर्तित करती रही हैं। इस इकाई में आदिकाल को प्रभावित करने वाली इन्हीं राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक तथा साहित्यिक परिस्थितियों की चर्चा करेंगे।

2.**<u>आदिकाल का स्वरूप एवं महत्व</u>**-

आदिकाल हिंदी साहित्य धारा का वह प्रारंभिक कालखंड है, जहां हिंदी साहित्य का आरंभ हुआ है। इस काल में परस्पर विरोधी तत्वों को एक साथ साहित्य में देखा जाता है। राजनीतिक उथल-पुथल विदेशी आक्रमण तथा दो- दो संस्कृतियों के मिलन के परिवेश में आदिकालीन साहित्य की रचना हुई है। अशांति और विखराव की स्थिति थी। जनमानस के सामने कई धर्म संप्रदाय के मार्ग थे। जैन, वैष्णव, सिद्ध, नाथ, धार्मिक संप्रदायों की बहुत सी प्रवृत्तियां इस युग के साहित्य में देखी जाती है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है- "शायद यह भारतवर्ष के साहित्य के इतिहास में इतने विरोध और स्वतोव्याघातों का युग कभी आया होगा। इस काल में एक तरफ तो संस्कृत के ऐसे बड़े बड़े कवि उत्पन्न हुए, जिनकी रचनाएं अलंकृत काव्य परंपरा की चरम सीमा पर पहुंच गई थी और दूसरी ओर अपभ्रंश के कवि हुए जो अत्यंत सहज सरल भाषा में अत्यंत संक्षिप्त शब्दों में अपने मनोभावों को प्रकट करते थे। फिर धर्म और दर्शन के क्षेत्र में भी महान प्रतिभाशाली आचार्यों का उद्धव इसी काल में हुआ था। दूसरी ओर निरक्षर संतो के ज्ञान प्रचार का बीज भी इसी काल में बोया गया"। आदिकालीन साहित्य का सृजन जिन परिस्थितियों में हुआ वह अत्यंत चिंतनीय रही है। इस युग का भारत भिन्न-भिन्न हो चुका था। अंतिम हिंदू सम्राट हर्षवर्द्धन के मृत्यु के उपरांत देश खंडों में विभाजित हो गया था। पूर्व में पालों, दक्षिण में राष्ट्रकूट आदि शक्तियां सुदृढ़ हो रही थी। राजपूतों के उदय होते ही लोमर, राठौर, चौहान आदि राजवंश भी राज्य सत्ता के दौड़ में शामिल होने लगे। केंद्रीय शक्ति के अभाव से अराजकता आ गई थी। यह राजवंशों ने परस्पर लड़ना आरंभ कर दिया था। ऐसे विधान भरे वातावरण में भी साहित्य को राजाश्रय प्राप्त होने लगा। भाषा और साहित्य विकसित होने लगी । कवि या साहित्यकारों को राजाओं का आश्रय प्राप्त था। कवियों ने अपने आश्रयदाताओं की प्रशस्ति प्रारंभ कर दी। इन्होंने ही वीरगाथात्मक काव्यों की रचना की है। जहाँ एक ओर युद्ध जर्जीत स्थितियों ने साहित्य को प्रभावित किया, वहीं दूसरी ओर जैन, बौद्ध तथा नाथ जैसे संप्रदाय के मत के प्रचार से सामाजिक सांस्कृतिक स्थिति में भी परिवर्तन हो रहा था। इसका प्रभाव भी आदिकालीन हिंदी साहित्य पर पड़ा। आदिकाल का साहित्य अनेक प्रवृत्तियों से युक्त जो अपने समसामयिक परिस्थितियों के परिणाम स्वरूप हमारे सामने है।

<u>3 परिस्थितियाँ: अर्थ और महत्व-</u>

साहित्यकार तथा परिस्थितियाँ एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। साहित्य समाज का दर्पण माना जाता है। अर्थात समाज में जो कुछ घट रहा है या जनमानस में जो विचारधारा पनपती है उसका प्रभाव उस युग के साहित्यकार पर पड़ता है। साहित्यकार पर पड़ा प्रभाव उसके साहित्य में भी परिलक्षित होता है। साहित्यकार जिस समाज में रहता है उसके परंपराएँ, घटनाएँ, स्थितियाँ परिवेश तथा परिवर्तन उसके दृष्टिकोण पर प्रभाव डालते हैं जिसका परिणाम उनकी रचनाओं में भी देखने को मिलता है। समाज में प्राप्त अनुभूति ही समाज में अभिव्यक्त होती है। उसमे कल्पना का मिश्रण भी अवश्य होता है किन्तु वह सदेववायवी या आधारहीन नहीं होती। समाज में हो रही घटना या परिवर्तन से जनमानस भी प्रभावित होती है। जनसामान्य की मनोवृति देश के राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक आदि

परिवेश से प्रभावित होता है। इसलिए आचार्य शुक्ल ने साहित्य को जनता की चित्तवृत्तियों' का परिणाम कहा है। जब-जब जनता की चित्तवृत्ति में परिवर्तन आएगा तब-तब साहित्य का स्वरूप भी बदलेगा। अतः यह कहा जा सकता है कि परिवेश और परिस्थितियाँ साहित्य के स्वरूप को नियंत्रित करती है। अतः किसी भी काल के साहित्य या साहित्यिक प्रवृत्ति को समझने के लिए उसको प्रभावित करने वाली परिस्थितियों के भूमिका की चर्चा किया जाना आवश्यक है। परिस्थितियाँ चित्तवृत्तियों को प्रभावित करती हैं और चित्तवृत्तियाँ रुचि, परिप्रेक्ष्य तथा दिशा को निर्धारित करती हैं। यही कारण है कि साहित्यकार परिस्थितियाँ बनाता भी है और परिस्थितियों को प्रभावित भी करता है। चित्तवृत्तियों के परिवर्तन से साहित्यकार की भी दिशा परिवर्तन होती है। यही कारण है कि आदिकाल में वीर रस का प्राधान्य रहा है तो भक्ति काल में भक्ति का और रीति काल में श्रृंगार का प्रधान हो गया। अतः यह कहा जा सकता है कि साहित्य और परिस्थिति का गहरा संबंध होता है। परिवर्तन परिवेश हमेशा नवीन साहित्य को प्रेरित और प्रभावित करता है।

4. <u>आदिकालीन साहित्य की पृष्ठभूमिः</u>

- <u>राजनीतिक परिस्थितिः</u>

आदि काल को हिंदी साहित्य का आरंभिक काल माना जाता है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह समय राजनैतिक स्थिरता एवंश्रृंखला का समय था। हर्षवर्द्धन साम्राज्य के पतन से आदिकाल का आरंभ माना जा सकता है। राजवर्द्धन के मृत्यु उपरांत उनका पुत्र हर्षवर्धन सिंहासन पर अरुण हुआ हर्षवर्द्धन ने अपने पराक्रम एवं प्रतिभा से अपने विरोधियों को वश में कर लिया। वह उत्तर भारत के अधिकतम शत्रु को एक सूत्र में बांधने में सफल हुआ। हर्षवर्धन के शासनकाल में चीनी यात्री होम संघ भारत यात्रा किया था। उसके द्वारा लिखे गए पुस्तक में हर्षवर्धन के समय के भारत के व्यवस्थित धर्म और समाज का उल्लेख मिलता है। यवन आक्रमण के कारण उत्तर भारत में आरंभ हो चुका था वर्धन साम्राज्य की शक्ति इसका प्रतिरोध करते करते हो रही थी हर्षवर्धन की मृत्यु के उपरांत उत्तर भारत खंडों में विभाजित हो गया। इस समय राजनीतिक परिदृश्य उलझा हुआ था। कुछ राज्य थोड़े समय के लिए शक्तिशाली तो हुए परंतु कोई भी राज्य अपनी प्रभुत्व स्थापित ना कर पाया। यह राज्य एक दूसरे के साथ युद्ध कर ही व्यस्त रहते थे उनमें से अजमेर के चौहान के गढ़वाल मालक के परमार अपनी सत्ता थोड़े समय के लिए स्थापित करने में सफल थे। विखंडित राज्यों के बीच पारस्परिक युद्ध आंतरिक कलह तथा विघटन से सामंतवादी प्रथा को प्रोत्साहन मिला। छोटे-छोटे शासकों के मध्यम होने वाला युद्ध हमेशा किसी आवश्यकता के नहीं होते थे। उसमें से अधिकांश राजा का कारण शौर्य प्रदर्शन और पराक्रम दिखाना था। यह काल आपसी संघर्ष का काल था। आपसी भेद तथा एकता के अभाव में भारत के उत्तर पश्चिमी सीमा पर हो रहे आक्रमण का सामना करने में देशी राजाएं असमर्थ रहे। युद्ध ने देशों को खोखला और जर्जर बना दिया था। इस युद्ध प्रभावित जीवन में संतुलन का अभाव था। जहां एक और विदेशी आक्रांता के अत्याचारों से पीड़ित थी वहीं दूसरी और युद्ध का में

देशी राजाओं का अत्याचार भी बढ़ता जा रहा था। पृथ्वीराज चौहान, जयचंद लड़ाई अंतिम कथाएं बनती गई। जनता में एक ऐसे साहस और वीरता के साथ लड़ते हुए जीना चाहता था। एक दूसरा वर्ग भी अपना जो विनाशलीला को देख कर अध्यात्मिक जीवन की बातें करता था जो मरते मरते जीवन का रस भोग लेना चाहता था। इन सब का प्रभाव मुख्यतः पश्चिम और मध्य देश पर पड़ रहा था। यही वह क्षेत्र था जहां हिंदी भाषा का विकास हो रहा था। फलतः इस काल का समस्त हिंदी साहित्य आक्रमण और युद्ध के प्रभावों की मनस्पतियों का प्रतिफलक है।

- <u>सामाजिक परिस्थितिः</u>

  राजनीतिक एंव धार्मिक परिस्थिति के कारण समाज में विशृंखला आ गई थी। जनता शासन और धर्म दोनों ओर से निराश्रित होती जा रही थी। समाज में जाति-पाँति के बंधन कड़े हो रहे थे। सामान्य जनता आशिक्षित थे। अनेक प्रकार के अंधविश्वास बढ़ते जा रहे थे। साधु सन्यासियों के शापों और वरदान की ओर लोग दृष्टि लगाए बैठे थे। पूजा-पाठ, तंत्र-मंत्र और जप-तप करके लोग महामारी और युद्ध जैसे समस्याओं को टालना चाहते थे। युद्धकालीन परिवेश से त्रस्त होकर जब जनता ईस्वर की ओर दौड़ती थी तो वहाँ भी उसे भ्रम और असाहयता की स्थिति ही मिलती थी। सांप्रदायिक तनाव बढ़ने की कारण साहित्य और शास्त्र का ज्ञान भी आम व्यक्ति के लिए अप्राप्य बन गया था। स्त्रियों की दशा और भी बदतर थी। स्त्री केवल भोग्या मात्र बनकर रह गई थी। स्त्रियों का सामाजिक कर्तव्य पुरुष के भोग का साधन बनने तक सीमित था। एक सामंत कई स्त्रियों को अपने साथ रखता था। राजा के लिए भी स्त्री मात्र भोग का साधन थी। जिस प्रकार शौर्य प्रदर्शन के लिए राजाओं के मध्य युद्ध होता था वैसे ही सुंदर स्त्रियों के लिए भी होने लगा। हिन्दी साहित्य भी इसके प्रभाव से अछूता नहीं रहा। पृथ्वीराज रासो और बीसलदेव रासो में युद्ध के कारण नारी का शत्रु के यहाँ से भागकर नायक के यहाँ आ जाने को परिकल्पित किया है। जीवन-यापन के साधन भी दुर्लभ थे। सामान्य जनता निर्धनता, युद्ध एंव आशांति के कारण त्रस्त थी। तत्कालीन समाज की इसी स्थिति में आदिकालीन कवियाँ साहित्य की सृजना की।
- **<u>धार्मिक परिस्थितियाँ</u>**

ईसा की छठी शताब्दी तक देश का धार्मिक वातावरण शांत था विभिन्न धार्मिक संप्रदाय के आपसी सहिष्णुता एवं मेलजोल था वैदिक यज्ञ, मूर्तिपूजा तथा जैन एवं बौद्ध उपासना पद्धतियां एक साथ चल रही थी। सातवीं शताब्दी में देश की धार्मिक परिस्थितियों में परिवर्तन देखने को मिला। आलावार और नायंबर संत दक्षिण भारत से उत्तर भारत की ओर धार्मिक आंदोलन लाए। बौद्ध धर्म अपने वास्तविक आदर्श को भूल कर अपने पतन की ओर जा रहा था। डॉ. नगेंद्र लिखते हैं 642 ईसवी में जब ह्वेनसांग ने दक्षिण भारत की यात्रा की तो वहाँ बौद्ध धर्म के पतन की झलक पा कर वह बहुत दुखी थे। इसका प्रभाव उत्तर भारत की और भी आ रहा था। इस समय तक वैष्णव मत अधिक प्रतिष्ठित नहीं हो पाया था। परिणामतः जनता या तो जैन मत सम्मान पा रहा था या शैव मत। शैव और जैन मत में आगे बढ़ने की होड़ के कारण टकराव होने लगा। बारहवीं शताब्दी तक आते-आते वैष्णव आंदोलन तीव्र होने लगा

था।शैव आंदोलन भी नया रूप लेने लगा था। जैन मत और प्रचारकों की शक्ति कम हो रहीथी। राजपूत अहिंसामूलक मतों में विश्वास नहीं करते थे। उन पर शैव मत का प्रभाव अधिक था। सिद्धों का प्रभाव निम्न वर्ग की अशिक्षित जनता पर अधिक था। वे तंत्र-मंत्र, जादू-टोना चमत्कार प्रदर्शन द्वारा सामान्य जनता में अपना प्रभाव जमा रहे थे। भारत के पश्चिमी प्रदेशों में विशेषकरगुजरात में जैन मत का बहुत ही अधिक प्रचार था। जैन मुनि धार्मिक तत्वों का निरूपण अपभ्रंश भाषा में कर रहे थे।स्वयंभू, पुष्पदंत, हेमचंद्र, धनपाल जैसे अनेक कवियों को जैन राजाओं का संरक्षण मिला। उनके संरक्षण में जैनमुनियों ने रचना की। जो विकृति बौद्ध धर्म में आ गई थी। उसका प्रभाव जैन धर्म पर भी पड़ रहा था। जैन धर्मावलंबी भी अपने मूल आदर्शों से दूर हट रहे थे। वैदिक और पौराणिक धर्म में भी इसी प्रकार की विकृति देखने को मिल रही थी। वैष्णव के पंचरात्र, शेवों के पशुपत और शाव्यों के त्रिपुर सुंदरी संप्रदाय पर बौद्ध धर्म की पूजा पद्धति एवं वामाचार का प्रभाव पड़ रहा था। देशव्यापी इस धार्मिक अशांति के समय इस्लाम धर्म के भारत का द्वार खटखटा रहा था। कुल मिलाकर यही कहा जा सकता है कि भारत के जनता के सामने कई धार्मिक मार्ग बन रहे थे। किंतु इन मार्गों को दिखाने वाले ईमानदार नहीं थे। बौद्ध सन्यासी योगिक चमत्कार का प्रभाव दिखा रहे थे। इस काल में अपभ्रंश प्रमुखतः धर्म की भाषा बन गई थी। जैन आचार्य ने मध्यप्रदेश के पश्चिमी सीमांत क्षेत्र में रहकर संस्कृत के पुराणों को नए रूप में प्रस्तुत किया। स्वयंभू, पुष्पदंत, धनपाल, हेमचंद्र जैसे जेन कवियों ने अपनी रचनाओं में प्राकृत अपभ्रंश तथा पुरानी हिंदी का मिश्रित रूप प्रस्तुत किया। सरहप्पा, शबरप्पा, लुईप्पा, गोरखनाथ और गोपीचंद जैसे सिद्धनाथ कवि साहित्य रचना अपभ्रंश के साथ लोक भाषा हिंदी का भी प्रयोग कर रहे थे। राजशेखर की 'कर्पूर मंजरी' अमरुक के 'अमरुक शतक' तथा हाल की आर्य सप्तशती अपभ्रंश के उत्तम कृतियां हैं। इस काल के तीनभाषाएं तीन प्रकार के रचना प्रवृत्तियों का सूचक बन गई थी। संस्कृत राज प्रवृत्ति का सूचक है, तो प्राकृत और अपभ्रंश धर्म की भाषा बन गई थी। हिंदी जनता की मानसिक स्थिति एवं भावनाओं का प्रतिनिधित्व कर रही थी।अतः स्पष्ट है कि इस युग में एक तरफ संस्कृत के वह आचार्य कवि तथा दार्शनिक हुए जिनके रचनाएँ, विचारधाराएँ तथा सिद्धांत आज भी अनुकरणीय है। दूसरी तरफ मुख्यतः धार्मिक साहित्य का माध्यम बनने वाली प्राकृत अपभ्रंश भाषा में लिखा गया साहित्य है। यहाँ इस बात पर ध्यान देने योग्य है कि प्राकृत अपभ्रंश भाषा के विभिन्न रूपों से ही आधुनिक भारतीय भाषाओं का जन्म हुआ है। अपभ्रंश के परवर्ती विकास को तो अवहट्ट या 'पुरानी हिंदी' भी कहा जाता है। देश भाषा हिंदी में भी जनता की मानसिक एवं भावनात्मक स्थिति की अभिव्यक्ति एक वर्ग कर रहा था। आदिकाल के वीरगाथात्मककाव्य में आश्रय दाताओं के शौर्य गान और अतिरंजना पूर्ण प्रशस्ति गान देखा जाता था। खुमाण रासो, बीसलदेव रासो, पृथ्वीराज रासो आदि रासो काव्य में यह विशेषता परिलक्षित होती है। । आदिकालीन कभी इस विघटन से भरी परिस्थितियों में रहकर भी सृजन से जुड़ा रहा। साहित्य और भाषा को इस वातावरण में भी पर्याप्त अवसर मिलता रहा। इस योग में वीर, भक्ति तथा श्रृंगार के साथ-साथ धार्मिक लौकिक और नीतिपरक साहित्य भी लिखा जाता रहा। दसवीं से चौदहवीं शताब्दी का काल साहित्य और भाषा की दृष्टि से विकास का काल था।

5 <u>सारांश-</u>

ऊपर के विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी साहित्य के आदि काल में जन जीवन सभी तरह से अस्त-व्यस्तथा आये दिन लड़ाई-झगड़ों से अमन-चैन नहीं था। राजसता से जनता पीड़ित थी। थोड़े दिनों के

लिए कोई सुशासक आता भी था तो दूसरे का आक्रमण सब कुछ तहस-नहस कर देता था। लोभी, का मीशा सक लोगों को बराबर सताते थे। युद्धमें हिस्सा लेने वाले सैन्य- सांमत भी जीवन को तुच्छ मान कर जान हथेली पर लेकर लड़ते थे_या फिर सुरा सुंदरी के साथ विला सिता में वक्त गुजारते थे। वीरोंके जीवन के दोपक्ष थे वीरत्व और विलास पृथ्वी राज जैसे बीर का जीवन भी ऐसा ही था। उनके जीवन-चरित पर आधारित 'पृथ्वी राजरासो' इसका विशद चित्र प्रस्तुत करता है। सामाजिक जीवन भी अस्तव्यस्त था। धर्मकी आड़ में जनता नचायीजा रही थी। पूजा उपासना आदि के आडम्बर पूर्ण बाह्याचार, वैदिक कर्म काण्डों की भर मार, तंत्र मंत्र, टोना टोटका का घटा टोप लोगों को परेशान कर रहा था। सिद्धों की चर्यापद, जैनियों की अनेक रचनाएँ इन धार्मिक स्थितियों की आज हैं। समाज में छुआ-छूत भेदभाव, ऊँच-नीच का झमेला, धनी निर्धन की विषमता, जीवन को विषमय कर रहे थे। इसके फलस्वरूप साहित्य में विविध प्रवृत्तियाँ प्रत बिंबित हो रही।

6. कीवर्ड्स (संकेत शब्द)- आदिकाल, साहित्य, पृष्ठभूमि, लेखक, सृजन, परिस्थितियों, चारणकाल ,प्रारंभिक काल, वीरगाथा काल, संधि काल

7 अभ्यास-

(लघु उत्तरीयमूलक प्रश्न)

1. आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने वीरगाथा कल की प्रारंभिक सीमा क्या मानी है?

2. हिंदी साहित्य की धारा का प्रारंभिक कालखंड किस नाम से जाना जाता है?

3. आदिकाल की पृष्ठभूमि से क्या तात्पर्य है?

8 **दीर्घ उत्तरमूलक प्रश्न**-

1. आदिकाल की पृष्ठभूमि स्पष्ट करते हुए तत्कालीन परिस्थितियों का वर्णन कीजिए।

2. आदिकाल के स्वरूप एवं विकास पर प्रकाश डालिए।

9 **संदर्भ ग्रंथ सूची**-

* हिन्दी साहित्य दर्शन डॉ आनंद नारायण शर्मा

* हिन्दी साहित्य का इतिहास डॉ. आलोक कुमार रस्तोगी

* हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास डॉ गणपती चंद्र गुप्त, 1956

* हिंदुई साहित्य का इतिहास डॉ गणपती चंद्र गुप्त, 1950

* हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास डॉ चतुरसेन शास्त्र

BLOCK 2

आदिकाल का नामकरण / समस्याएँ

UNIT-2

इकाई की रूपरेखाः-

उद्देश्य- इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

• आदिकालीन साहित्य के नामकरण की समस्याएं

को समझ पाएंगे।

• आदिकालीन साहित्य की प्रवृत्तियों को चर्चा कर पाएंगे ।

• आदिकाल के प्रमुख साहित्यिक रचनाएँ और रचनाकार से परिचित हो पाएंगे

1. प्रस्तावना
2. नामकरण की समस्याएं
3. ऐतिहासिक और सांस्कृतिक संदर्भ
4. काल विभाजन की समस्याएं

5. काल विभाजन की समस्याएं
6. प्रमुख साहित्यिक रचनाएँ और रचनाकार
7. भाषा और शैली की विविधता
8. कीवर्ड्स (संकेत शब्द)
9. अभ्यास (लघु उत्तरीय मूलक प्रश्न)
10. दीर्घ उत्तरीयमूलक प्रश्न
11. संदर्भ ग्रंथ सूची

1 <u>प्रस्तावना</u>- आदिकाल हिंदी साहित्य का प्रारंभिक चरण है, जो 1000 ई. से 1400 ई. तक माना जाता है। इसे हिंदी साहित्य के इतिहास में "वीरगाथा काल" के नाम से भी जाना जाता है। इस काल में हिंदी साहित्य का प्रारंभिक विकास हुआ और इसने आने वाले युगों के लिए एक ठोस नींव तैयार की। आदिकाल की साहित्यिक धारा में वीरता, शौर्य, भक्ति और नीति परक रचनाएँ प्रमुख रूप से सम्मिलित हैं। आदिकाल का समय भारतीय इतिहास में एक संक्रमण काल था, जहाँ भारतीय समाज कई महत्वपूर्ण परिवर्तनों से गुजर रहा था। इस समय भारत में विभिन्न राजवंशों का उदय हुआ, जैसे कि चौहान, चंदेल, परमार, और पाल राजवंश। इन राजवंशों ने अपनी वीरता और शौर्य का गुणगान करने वाले साहित्य का प्रोत्साहन किया। धार्मिक और सामाजिक संरचना में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन हो रहे थे, जो साहित्य में परिलक्षित हुए।

2 नामकरण की समस्याएं-

- **परिभाषा की अस्पष्टता:** "आदिकाल" शब्द का अर्थ है "प्रारंभिक काल," लेकिन इस अवधि की सटीक सीमाओं और विशेषताओं को परिभाषित करना मुश्किल हो सकता है। विभिन्न विद्वानों ने इस काल को अलग-अलग तरीके से परिभाषित किया है।
- **साहित्यिक सामग्री की कमी:** इस अवधि के साहित्यिक कार्यों की संख्या सीमित है, और उनमें से कई अप्राप्य या खंडित अवस्था में हैं, जिससे इस काल की विशेषताओं को निर्धारित करना कठिन हो जाता है।

3 ऐतिहासिक और सांस्कृतिक संदर्भ:

- **धार्मिक और समाजिक प्रभाव:** इस काल में साहित्य पर धार्मिक और समाजिक प्रभाव बहुत गहरा था। भक्ति और वीरगाथा साहित्य का प्रचलन अधिक था।

- **भाषाई विकास:** हिंदी भाषा का विकास इस काल में प्रारंभिक अवस्था में था। इसलिए, भाषा और व्याकरण की दृष्टि से इस काल के साहित्य की समझना चुनौतीपूर्ण हो सकता है।

4.काल विभाजन की समस्याएं:

- **कालखंड के विभाजन में असहमति:** आदिकाल के नामकरण में कई विद्वानों के बीच मतभेद रहे हैं। कुछ विद्वान इस काल को "वीरगाथा काल" के नाम से भी जानते हैं, जबकि कुछ इसे "प्रारंभिक हिंदी साहित्य का काल" मानते हैं।
- **पारंपरिक और लोक साहित्य का मिश्रण:** इस काल के साहित्य में पारंपरिक और लोक साहित्य का मिश्रण है, जिससे इसे एक सटीक वर्गीकरण में रखना मुश्किल हो जाता है।

5.प्रमुख साहित्यिक रचनाएँ और रचनाकार:

- **चंद बरदाई:** 'पृथ्वीराज रासो' के रचयिता चंद बरदाई का नाम प्रमुख है। उनकी रचनाएं वीरगाथा काल की श्रेणी में आती हैं।
- **विद्यापति और अन्य रचनाकार:** इस काल के अन्य रचनाकारों में विद्यापति जैसे कवि भी शामिल हैं, जिन्होंने मैथिली और अवधी भाषा में रचनाएँ कीं।

6.भाषा और शैली की विविधता:

- **अपभ्रंश और प्रारंभिक हिंदी:** इस काल की भाषाई विविधता को समझना चुनौतीपूर्ण है क्योंकि यह अपभ्रंश और प्रारंभिक हिंदी के मध्य की भाषा में लिखा गया है।
- **शैली और विधाएँ:** वीरगाथा शैली प्रमुख थी, लेकिन अन्य काव्य शैलियाँ और विधाएँ भी प्रचलित थीं।

इन समस्याओं के बावजूद, आदिकाल का साहित्य हिंदी साहित्य की महत्वपूर्ण धरोहर है, जो हमें उस समय के समाज, संस्कृति और धार्मिक दृष्टिकोण की झलक देता है। इन पहलुओं का अध्ययन करके हम आदिकाल के साहित्य को बेहतर समझ सकते हैं।
आदिकाल हिंदी साहित्य का एक महत्वपूर्ण कालखंड है, जिसे 1000 ई. से 1400 ई. तक माना जाता है। इसे हिंदी साहित्य के प्रारंभिक विकास का युग भी कहा जाता है। इस काल को अक्सर "वीरगाथा काल" के नाम से भी जाना जाता है, क्योंकि इस समय के साहित्य में वीरता, शौर्य और युद्ध गाथाओं का प्रमुख स्थान था।

<u>आदिकाल के प्रमुख विशेषताएँ:</u>

वीरगाथा साहित्य:

- इस काल के साहित्य में वीरता और शौर्य का वर्णन प्रमुख है। राजा-महाराजाओं के युद्ध और उनके वीरतापूर्ण कारनामों को कविता और गाथाओं के माध्यम से प्रस्तुत किया गया।
- प्रमुख रचनाएँ: 'पृथ्वीराज रासो' (चंद बरदाई), 'बीसलदेव रासो', 'परमाल रासो' आदि।

2. **धार्मिक साहित्य**:

- इस समय में धार्मिक भावनाओं और भक्ति की अभिव्यक्ति भी देखी जा सकती है। जैन और बौद्ध धर्म के प्रभाव में धार्मिक साहित्य का सृजन हुआ।
- प्रमुख रचनाकार: हेमचंद्र, विद्यापति आदि।

भाषा और शैली:

- इस काल की भाषा अपभ्रंश और प्रारंभिक हिंदी के मध्य की है। इसमें राजस्थानी, ब्रज, अवधी और अन्य बोलियों का मिश्रण है।
- शैली में वीरगाथा, भक्ति और नीति परक काव्य शामिल हैं।

सामाजिक और सांस्कृतिक परिदृश्य:

- इस काल में समाज मुख्यतः सामंती व्यवस्था पर आधारित था। राजाओं और योद्धाओं की प्रतिष्ठा उच्च थी।
- धार्मिक संस्थाओं और मठों का भी समाज में महत्वपूर्ण स्थान था।
- प्रमुख रचनाकार और रचनाएँ:

1. **चंद बरदाई**:

- 'पृथ्वीराज रासो' के रचयिता चंद बरदाई, जो पृथ्वीराज चौहान के दरबारी कवि थे।
- यह रचना वीरगाथा साहित्य का महत्वपूर्ण उदाहरण है, जिसमें पृथ्वीराज चौहान के वीरतापूर्ण कार्यों का वर्णन है।

2. **विद्यापति**:

- मैथिली और अवधी भाषा के प्रमुख कवि विद्यापति ने प्रेम और भक्ति पर आधारित रचनाएँ कीं।
- उनकी कृतियों में धार्मिक और लौकिक प्रेम की अभिव्यक्ति मिलती है।

3. **सरहपा** और **कन्हपा**:

ये दोनों संत कवि बौद्ध धर्म से प्रभावित थे और अपने दोहों में बौद्ध धर्म की शिक्षाओं को व्यक्त करते थे।

<u>आदिकाल की समस्याएँ और चुनौतियाँ</u>:

1. **प्राचीन साहित्य की अनुपलब्धता**:

- इस काल की कई रचनाएँ समय के साथ नष्ट हो गईं या खंडित हो गईं, जिससे इस काल के साहित्य को पूर्णता में समझना कठिन हो जाता है।

2. **विभिन्न मतों के बीच असहमति**:

- विभिन्न विद्वानों के बीच इस काल के नामकरण और इसके साहित्यिक महत्व को लेकर असहमति है।

3. **भाषाई जटिलता**:

- अपभ्रंश और प्रारंभिक हिंदी की मिश्रित भाषा को समझना और उसका सही अर्थ निकालना चुनौतीपूर्ण है।

आदिकाल हिंदी साहित्य के विकास का प्रारंभिक चरण होने के कारण महत्वपूर्ण है। इस काल के साहित्य ने न केवल वीरता और भक्ति की धारा को प्रवाहित किया बल्कि भविष्य के साहित्यिक विकास की नींव भी रखी।

8. कीवर्ड्स (संकेत शब्द)- आदिकाल, हिंदी साहित्य, प्रारंभिक चरण, वीरगाथा काल, प्रारंभिक विकास साहित्यिकधारा, भक्ति

<u>9 अभ्यास-</u>

(लघु उत्तरीयमूलक प्रश्न)

1. हिंदी साहित्य की धारा का प्रारंभिक कालखंड किस नाम से जाना जाता है?

2. आदिकाल की नामकरण की समस्याएं से क्या तात्पर्य है?

10.**<u>दीर्घ उत्तरमूलक प्रश्न-</u>**

1 आदिकाल ऐतिहासिक और सांस्कृतिक संदर्भ **पृष्ठभूमि स्पष्ट करते हुए तत्कालीन परिस्थितियों का वर्णन कीजिए।**

2. आदिकाल काल विभाजन की समस्याएं **पर प्रकाश डालिए।**

11 संदर्भ ग्रंथ सूची-

* हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास डॉ गणपती चंद्र गुप्त, 1956

* हिंदुई साहित्य का इतिहास डॉ गणपती चंद्र गुप्त, 1950

* हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास डॉ चतुरसेन शास्त्री

BLOCK 3

आदिकाल की प्रमुख काव्य प्रवृत्तियाँ

Unit 3

इकाई की रूपरेखाः

उद्देश्य-

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- आदिकालीन साहित्य के विभिन्न वर्ग को समझ पाएंगे।
- आदिकालीन साहित्य की प्रवृत्तियों को चर्चा कर पाएंगे ।
- आदिकाल की पृष्टभूमियों से परिचित हो पाएंगे

1 प्रस्तावना

2 आदिकालीन साहित्य का वर्गीकरण

3 आदिकालीन साहित्य की प्रवृत्तियाँ

4 सारांश

5 कीवर्ड्स (संकेत शब्द)

6 अभ्यास (लघु उत्तरीय मूलक प्रश्न)

7 दीर्घ उत्तरीयमूलक प्रश्न

8 संदर्भ ग्रंथ सूची

1 <u>प्रस्तावना</u>

हिंदी साहित्य के इतिहास का यह काल, जिसका हमने 'आदिकाल'के नाम से विवेचन किया है, भाषा और साहित्य की दृष्टि से पर्याप्त संपन्न है। उसकी समस्त देन का अभी तक सम्यक् मूल्यांकन नहीं हो पाया है, क्योंकि विद्वान प्रामाणिकता एवं भाषा के विवादों में उलझे रहे हैं। कई ऐसी उपलब्धियां सामने आती हैं, जिनका परवर्ती साहित्य पर अपार ऋण है। आदिकाल में हिंदी भाषा साहित्यिक अपभ्रंश के साथ साथ चलती हुई क्रमशः जनभाषा के रूप में साहित्य-रचना का माध्यम बन रही थी। समस्त आदिकाल में दो भाषाओं की यह समानांतर रचना-प्रक्रिया चलती रही। फलतः कभी अपभ्रंश के नाम पर भी हिंदी का आरंभिक साहित्य छोड दिया गया है और कभी पुरानी हिंदी के नाम पर अपभ्रंश का परवर्ती साहित्य भी हिंदी साहित्य में सम्मिलित कर लिया गया है। नयी खोजों से अब यह धारणा स्पष्ट हो चुकी है कि जनभाषा के रूप में हिंदी आठवीं शताब्दी में ही साहित्य का माध्यम बन चुकी थी तथा वह अपभ्रंश भाषा के साथ अपनी भूमि पर आगे भी बढ़ने लगी थी। फलतः अपभ्रंश में साहित्य लिखने वाले कवि अवसर पा कर हिंदी में भी कविता किया करते थे। कवि हिंदी के मार्ग पर अग्रसर हो गये। एक विशाल क्षेत्र की अनेक बोलियों से उसका एक सामान्य रूप विकसित हो रहा था। वह मिथिला से मेवाड़ तक की व्यापक जनभाषा बन कर जनमानस को प्रभावित कर रही थी। संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश के शब्द भी यदि अपनी सीमा छोड़ कर हिंदी का दामन पकड़ना चाहते थे, तो कविगण बड़े प्रेम से उनके सामने अपना हृदय खोल देते थे। जनभाषा के प्रयोग की यह प्रवृत्ति धीरे-धीरे जनजीवन के सभी रूपों को प्रस्तुत करने में समर्थ होती जा रही थी। आदिकालीन हिंदी का संस्कृत और संस्कृति की ओर जाने वाला व्यापक जनभाषायी स्वरूप अभिधेय रूप में भी पर्याप्त संप्रेषणीय था। आदिकालीन साहित्य जनजीवन की जिन अनुभूतियों से प्रकट हुआ था, उनमें पर्याप्त विविधता थी। अतः वह एक भीड़ का सायास लिखित साहित्य नहीं है. अपितु एक सचेतन समाज की सहज स्थितियों से उत्पन्न साहित्य है। यही कारण है कि उसमें जीवन की विभिन्न दशाओं और स्वच्छंद प्रवृत्तियों के विविध चित्र मिलते हैं। कथ्य की दृष्टि से आदिकालीन साहित्य में एक साथ कई परंपराओं का उदय दिखायी देता है। अपभ्रंश और संस्कृत की रचनाओं में इनमें से कुछ परंपराओं के स्रोत अवश्य है, किंतु उनकी शक्ति और गंभीरता

हिंदी की अपनी देन है। समाज की विभिन्न स्थितियों पर दृष्टिपात करके सहज जीवन का मार्ग सुझाने से ले कर हठयोग की साधना तक आदिकाल में मुक्तक काव्यरूप का जो विस्तार हुआ, निश्चय ही उसका पर्याप्त ऐतिहासिक महत्त्व है। आदिकालीन साहित्य में कथ्य की विविधता के साथ छंद-प्रयोग की विविधता भी रही है। डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी ने छंद की दृष्टि से कुछ सीमाएं बनायी हैं। उन्होंने श्लोक को लौकिक संस्कृत का, गाथा को प्राकृत का तथा दोहे को अपभ्रंश का मुख्य छंद स्वीकार किया है। वस्तुतः दोहा छंद अपभ्रंश में जनभाषा से ही गया था, इसलिए इस छंद को हिंदी का मुख्य छंद मानना चाहिए। आदिकालीन रासोकाव्यों में वीर रस की व्यंजना के लिए छप्पय, तोटक, तोमर, पद्धरि और नाराच का प्रयोग अधिक किया गया। इनमें से कुछ छंद अपभ्रंश में भी प्रयुक्त हो रहे थे। छंद के अतिरिक्त कथा कहने के ढंग की भी कुछ शिल्प-पद्धतियां इस काल में प्रचलित रहीं। इनमें कथानक रूढ़ियों का महत्त्व है। रासो ग्रंथों में इस प्रकार की रूढ़ियों का विशेष प्रयोग मिलता है। ये शैलियां हैं: डिंगल तथा पिंगल। आदिकालीन हिंदी साहित्य में वीर रस की रचनाओं में डिंगल शैली का प्रयोग होता था तथा कोमल भावों की अभिव्यंजना पिंगल शैली में की जाती थी। जब कवि डिंगल-शैली का प्रयोग करता था तो वह हिंदी बोलियों के कर्कश शब्दों को अपनाता था। किंतु पिंगल- शैली के प्रयोग में धीरे-धीरे कोमल शब्दावली का विकास हो रहा था। डिंगल की कर्कश शब्दावली सीमित थी, अतः इस शैली के साहित्य का अधिक विस्तार न हो सका। पिंगल-शैली लोकप्रिय होती चली गयी और उसका ब्रजभाषा में विगलन हो गया। जो लोग 'डिंगल'को राजस्थानी भाषा का पर्याय मानते हैं, वे भूल करते हैं।

2<u>आदिकालीन साहित्य का वर्गीकरण</u>

आदिकाल की पूर्वोक्त सामग्री को अध्ययन की सुविधा के लिए निम्नांकित वर्गों में विभाजित किया जा सकता हैं- (1) सिद्ध-साहित्य, (2) जैन-साहित्य, (3) नाथ-साहित्य, (4) रासो साहित्य, (5) लौकिक साहित्य, (6) गद्यरचनाएं। सिद्ध-साहित्य के अंतर्गत चौरासी सिद्धों की वे साहित्यिक रचनाएं आती हैं, जो तत्कालीन लोकभाषा हिंदी में लिखी गयी हैं। सरहपा, लुइपा, विरूपा, कण्हपा, कुक्कुरिपा, तांतिपा आदि सिद्धों की कई रचनाएं इस कोटि में आती हैं। जैन साहित्य में वे हिंदी रचनाएं सम्मिलित हैं, जिनमें जैन-धर्म की कथाओं, दार्शनिक मंतव्यों या उपदेशों को आधार बनाया गया है। श्रावकाचार, भरतेश्वर बाहुबलीरास, चंदनबालारास, स्थूलिभद्ररास, रेवंतगिरिरास तथा नेमिनाथरास इसी वर्ग की रचनाएं हैं। नाथ साहित्य के अंतर्गत गोरखनाथ, चौरंगीनाथ, गोपीचंद, जलन्धीनाथ आदि हठयोगी कवियों की रचनाएं सम्मिलित हैं। चुणकरनाथ, भरथरी, रासो और रास नाम वाली सभी पुस्तकें रासो-साहित्य का अंग नहीं हैं। हमने रासो साहित्यके अंतर्गत उन्हीं रचनाओं को लिया है, जिनमें राजाओं की ऐतिहासिक वीरगाथाएं मिलती हैं। इस वर्ग में हम्मीरराव, माणसे, बीसलदेवराय तथा पृथ्वीराज सम्मिलित हैं कुछ ऐसी रचनाएं भी इसी काल में लिखी गयी थीं, जो उपर्युक्त किसी भी वर्ग में नहीं आतीं। उन रचनाओं में लौकिक विषयों को मुख्य आधार बनाया गया है। अतः हम उन्हें 'लौकिक-साहित्य'वर्ग में रख सकते हैं। ढोला-मारू रा दूहा, जयचंदप्रकाश, जयमयंकजसचंद्रिका, वसंतविलास और खुसरो की पहेलियां आदि इसी कोटि की रचनाएं हैं।हिन्दी

कविता का प्रारंभिक प्रारूप भारत में सिद्धों की रचनाओं में मिलता है। सिद्धों का संबंध बौद्ध धर्म से था। बौद्ध धर्म कालांतर में तंत्रवाद में परिवर्तित हो गया। वज्रयान इसी प्रकार की साधना थी। सिद्ध व्रजयानी थे। वज्रयानी साधना, वाममर्गी साधना थी। इसमें पूजा पाठ के स्थान पर रहस्य और गुप्त साधना का प्रचलन था। सिद्धों ने अपने साहित्य में कायायोग, सहज शून्य तथा समाधि की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं का वर्णन किया है। दूसरे शब्दों में कहें तो इन सिद्धों ने स्थापित मान्यताओं का विरोध किया है। उनके विरोधी तेवर का नतीजा मात्र साधना के ही स्तर पर प्रकट न होकर सामाजिक मान्यताओं के स्तर पर भी प्रतिफलित हुआ है। सिद्ध साहित्य का अध्ययन करने पर पता चलता है कि उनका विरोध मात्र सामाजिक संस्था के स्तर पर नहीं दिखाई देता अपितु उसी विद्रोही प्रवृत्ति का प्रभाव साहित्यिक अनुभूति और भाषा की अभिव्यजना में भी सर्वत्र प्राप्त होता है। वे जो कुछ कहना चाहते थे उसे सीधे अर्थ में कहने से उस व्यवस्था से विरोध प्रकट होता था जिसे उस समय के समाज ने निर्मित किया था। व्यवस्था से सीधा टकराना उन योगियों के लिए आसान नहीं था अतः उन्होंने अर्थ को कभी उलटकर कभी, छुपाकर प्रकट किया, जिससे उनका मंतव्य भी स्पष्ट हो जाए और व्यवस्था से सीधा टकराव भी हो। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने सिद्धों की कविता को हिन्दी साहित्य में स्थान नहीं दिया था लेकिन हिन्दी के प्रारंभिक रूप का पता उन्हें सिद्धों की रचनाओं में मिलता है। इन दोनों बातों में एक प्रकार का विरोधाभास है। आचार्य शुक्ल यदि सिद्धों को साहित्य लोकमर्यादा विरोधी है, उनमें जीवन की स्वाभाविक अनुभूतियाँ नहीं है। लेकिन ध्यान से देखा जाए तो यह सिद्धों के विद्रोही तेवर का ही नतीजा है कि वे लोकजीवन के यथास्थितिवाद का भी विरोध करते हैं और भाषा के स्तर पर उनका वही विद्रोह प्रतिफलित होता है। उन्होंने अपभ्रंश की साहित्यिक भाषा को छोड़कर जनता की भाषा को अपनाया। सिद्धों के साहित्य की विशेषताओं की विस्तृत चर्चा हम अगली इकाई में करेंगे। नाथ संप्रदाय का प्रारंभ सिद्धों के थोड़े समय बाद हुआ। नाथ पंथ की दार्शनिकता का आधार शैव मत है और व्यवहार में उन्होंने पतंजलि के हठयोग को अपनाया है। इन्हीं कुछ आधारों पर उन्होंने अपने संप्रदाय को सैद्धान्तिक रूप दिया है। सिद्धों की वाममार्गी साधना के विपरीत उन्होंने मद्यमांस त्याग तथा मानसिक शुचिता पर बल दिया है। जैन साहित्य में वे हिंदी रचनाएं सम्मिलित हैं, जिनमें जैन-धर्म की कथाओं, दार्शनिक मंतव्यों या उपदेशों को आधार बनाया गया है। श्रावकाचार, भरतेश्वर बाहुबलीरास, चंदनबालारास, स्थूलिभद्ररास, रेवंतगिरिरास तथा नेमिनाथरास इसी वर्ग की रचनाएं हैं। नाथ साहित्य के अंतर्गत गोरखनाथ, चौरंगीनाथ, गोपीचंद, जलन्धीनाथ आदि हठयोगी कवियों की रचनाएं सम्मिलित हैं। चुणकरनाथ, भरथरी, रासो और रास नाम वाली सभी पुस्तकें रासो-साहित्य का अंग नहीं हैं। हमने रासो साहित्य के अंतर्गत उन्हीं रचनाओं को लिया है, जिनमें राजाओं की ऐतिहासिक वीरगाथाएं मिलती हैं। इस वर्ग में हम्मीरराव, माणसे, बीसलदेवराय तथा पृथ्वीराज सम्मिलित हैं कुछ ऐसी रचनाएं भी इसी काल में लिखी गयी थीं, जो उपर्युक्त किसी भी वर्ग में नहीं आतीं। उन रचनाओं में लौकिक विषयों को मुख्य आधार बनाया गया है। अतः हम उन्हें 'लौकिक-साहित्य'वर्ग में रख सकते हैं। ढोला-मारू रा दूहा, जयचंदप्रकाश, जयमयंकजसचंद्रिका, वसंतविलास और खुसरो की पहेलियां आदि इसी कोटि की रचनाएं हैं।हिन्दी कविता का प्रारंभिक प्रारूप भारत में सिद्धों की रचनाओं में मिलता है। सिद्धों का संबंध

बौद्ध धर्म से था। बौद्ध धर्म कालांतर में तंत्रवाद में परिवर्तित हो गया। वज्रयान इसी प्रकार की साधना थी। सिद्ध व्रजयानी थे। वज्रयानी साधना, वाममर्गी साधना थी। इसमें पूजा पाठ के स्थान पर रहस्य और गुप्त साधना का प्रचलन था। सिद्धों ने अपने साहित्य में कायायोग, सहज शून्य तथा समाधि की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं का वर्णन किया है। दूसरे शब्दों में कहें तो इन सिद्धों ने स्थापित मान्यताओं का विरोध किया है। उनके विरोधी तेवर का नतीजा मात्र साधना के ही स्तर पर प्रकट न होकर सामाजिक मान्यताओं के स्तर पर भी प्रतिफलित हुआ है। सिद्ध साहित्य का अध्ययन करने पर पता चलता है कि उनका विरोध मात्र सामाजिक संस्था के स्तर पर नहीं दिखाई देता अपितु उसी विद्रोही प्रवृत्ति का प्रभाव साहित्यिक अनुभूति और भाषा की अभिव्यजना में भी सर्वत्र प्राप्त होता है। वे जो कुछ कहना चाहते थे उसे सीधे अर्थ में कहने से उस व्यवस्था से विरोध प्रकट होता था जिसे उस समय के समाज ने निर्मित किया था। व्यवस्था से सीधा टकराना उन योगियों के लिए आसान नहीं था अतः उन्होंने अर्थ को कभी उलटकर कभी, छुपाकर प्रकट किया, जिससे उनका मंतव्य भी स्पष्ट हो जाए और व्यवस्था से सीधा टकराव भी हो। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने सिद्धों की कविता को हिन्दी साहित्य में स्थान नहीं दिया था लेकिन हिन्दी के प्रारंभिक रूप का पता उन्हें सिद्धों की रचनाओं में मिलता है। इन दोनों बातों में एक प्रकार का विरोधाभास है। आचार्य शुक्ल यदि सिद्धों को साहित्य लोकमर्यादा विरोधी है, उनमें जीवन की स्वाभाविक अनुभूतियाँ नहीं है। लेकिन ध्यान से देखा जाए तो यह सिद्धों के विद्रोही तेवर का ही नतीजा है कि वे लोकजीवन के यथास्थितिवाद का भी विरोध करते हैं और भाषा के स्तर पर उनका वही विद्रोह प्रतिफलित होता है। उन्होंने अपभ्रंश की साहित्यिक भाषा को छोड़कर जनता की भाषा को अपनाया। सिद्धों के साहित्य की विशेषताओं की विस्तृत चर्चा हम अगली इकाई में करेंगे। नाथ संप्रदाय का प्रारंभ सिद्धों के थोड़े समय बाद हुआ। नाथ पंथ की दार्शनिकता का आधार शैव मत है और व्यवहार में उन्होंने पतंजलि के हठयोग को अपनाया है। इन्हीं कुछ आधारों पर उन्होंने अपने संप्रदाय को सैद्धान्तिक रूप दिया है। सिद्धों की वाममार्गी साधना के विपरीत उन्होंने मद्यमांस त्याग तथा मानसिक शुचिता पर बल दिया है। साधना के मुख्य अंग हैं। नाथ साहित्य में दो महत्वपूर्ण बातों की ओर ध्यान जाता है। पहली यह कि नाथ साहित्य में धर्म निरपेक्ष दृष्टि दिखाई देती है। इसमें ईश्वर से मिलाने वाला योग हिंदू और मुसलमान दोनों के लिए एक सामान्य साधना के रूप में प्रस्तुत हुआ है। नाथपंथ में धार्मिक कट्टरता नहीं मिलती है। दूसरी जो महत्वपूर्ण बात नाथ साहित्य के संदर्भ में कही जा सकती है, वह यह कि नाथों के साहित्य में यायावरी साहित्य का गुण मिलता है। नाथ जोगी अपने धर्म प्रचार के लिए विभिन्न प्रदेशों की यात्रा करते थे। देश के मध्य भाग तथा पश्चिमी भाग में वे घूमते रहते थे। यात्रा में विभिन्न प्रदेशों की संस्कृति, भाषा और व्यवहार से परिचय होता है। यह प्रभाव उनकी भाषा पर भी पड़ा। नाथों ने धर्म के स्तर पर ही सहिष्णुता और आपसी सद्भाव की भावना विकसित नहीं की भाषा के स्तर भी उन्होंने इस भाव को अर्जित किया। इसी भाषा की प्रस्तावना बाद के निर्गुण साहित्य में भी मिलती है। कबीर आदि ने इसी प्रकार की भाषा को अपनाया। नाथों की भाषा का महत्व परवर्ती साहित्य की पृष्ठभूमि के रूप में समझा जा सकता है। नाथ साहित्य का व्यापक योगदान संतसाहित्य की परंपरा को अपना उत्तराधिकार सौंपने में है। जैन

साहित्य की अधिकांश रचनाएँ अपभ्रंश साहित्य के अंग है जिनके बारे में आप अगली इकाई में पढ़ेंगे। लेकिन कुछ साहित्य अवश्य ऐसे हैं, जिन्हें हिंदी भाषा और साहित्य की रचना कहा जा सकता है। इन रचनाओं में कुछ का उल्लेख किया जा सकता है। शालिभद्र सूरि की रचना "भरतेश्वर बाहुबली रास (1884 ई.) असुग की कृति "चंदनबाला रास (1200 ई.) जिनधर्म सूरि कृत "स्थूलिभद्र रास (1209 ई.) विजय सेन सूरि की रचना "रेवन्तगिरिरास" (1231 ई.), सुमतिगण का "नेमिनाथ रास" जैसी कुछ साहित्यिक कृतियों को हिन्दी साहित्य में स्थान मिलना चाहिए। अब प्रश्न उठता है कि जैन रचनाओं के अध्ययन की क्या आवश्यकता है। प्रारंभिक हिंदी रचनाओं की सृजनात्मक अनुभूति को समझने के लिए जैन साहित्य का अध्ययन अनिवार्य है क्योंकि जैन साहित्य उस हिंदी का अभिन्न अंग है। आचार्य शुक्ल अवश्य धार्मिक साहित्य के आधार पर जैन ग्रंथों को हिंदी से बाहर रखना चाहते हैं। धार्मिकता साहित्यिक संवेदना का अवरोधक तत्त्व नहीं है नहीं तो भक्तिकाल हिंदी साहित्य का स्वर्णयुग नहीं होता। प्रश्न केवल यह उठता है कि यह साहित्य अपने दृष्टिकोण में कितना प्रगतिशील है। धार्मिक मतवाद के बीच यह तलाश करने की आवश्यकता होती है कि उनमें मानवीय अनुभूतियों का कितना गहरा स्पर्श है। उसमें सामाजिक बोध और मानवीय गरिमा को पाने की क्षमता किस हद तक है। धार्मिक परत को हटाने के बाद उस साहित्य से जीवन का सौन्दर्य मिलता है या नहीं। यही हमारे साहित्यिक संवेदना को परखने तक आधार हो सकता है। भारतीय साहित्य में "महाभारत" जैसे महाकाव्य में धार्मिक जटिलता है लेकिन इसके साथ उसमें हमें मानवीय सच का गहरा बोध भी मिलता है। कहने का तात्पर्य यह है कि मानवीय अनुभूति ही साहित्य का आधार है। इसी से कलाकृति का सामाजिक मूल्य और जीवन मूल्य पहचाना जाता है। आदिकाल की परिधि में जो जैन साहित्य आता है उसमें धर्म मात्र प्रेरणा का विषय है। जैन साहित्य में भावों की जटिलता को मनोवैज्ञानिक रूप में चित्रित किया गया है। मानव के विविध भावों के बीच जो अंतर्द्वन्द्व चलता है, उसका सूक्ष्मता से विश्लेषण मिलता है। आदिकालीन साहित्य की एक विशेष प्रवृत्ति रासो साहित्य है। सामान्यतया रासो काव्य से वीरगाथात्मक काव्य का बोध होता है रासो काव्य की एक विशिष्ट परंपरा इस युग में मिलती है रासो साहित्य की रचना भट्ट और चारणों द्वारा की गई है रासो काव्य और अपभ्रंश के रास काव्य, के बीच कोई संबंध रहा है या नहीं इस पर विद्वानों में विवाद है। रासो और रास काव्य के बीच थोड़ा भेद है। रासो काव्य धारा ने जहाँ जीवन के युद्ध और प्रेम के पक्षों तक अपनी संवेदना को सीमित रखा, वहीं रास काव्य में जीवन के विविध पक्षों का चित्रण मिलता है। पं. नरोत्तम स्वामी के अनुसार रास और रासों में अंतर अंत तक बना रहा है। वे रास को मूलतः प्रेम काव्य मानते हैं। तथा रासो काव्य को वीर काव्य मानते हैं। अब रासो और रास के अर्थ एक विशेष प्रकार के काव्य के लिए रूढ़ हो गए हैं। रास काव्य में जैन कवियों द्वारा लिखे हुए रासक ग्रंथ और "संदेश रासक" जैसे काव्य आते हैं रासो काव्य में चारणों द्वारा लिखे गए वीरता की भावना से भरे हुए काव्य को स्थान दिया जाता है। साहित्य किस प्रकार से संरक्षित हुआ होगा, बहुत कुछ इस पर निर्भर करता है। उदाहरण के लिए जैन साहित्य की प्रामाणिकता असंदिग्ध है क्योंकि धार्मिक संरक्षण के कारण इसकी पांडुलिपि मठों में पीढ़ी दर पीढी सुरक्षित रह सकी रासो साहित्य

की रचना चारणों द्वारा होती थी जो राजाश्रय में रहते थे राजाओं के आपसी संघर्ष में स्वयं राजाओं का टिकना संभव नहीं हो पा रहा था, तब उनके द्वारा संरक्षित साहित्य कितनी सुरक्षा पा सकता था, यह सोचने की बात है। चारणों ने उसमें कई फेर बदल किए। आदिकाल में साहित्य धार्मिक साहित्य और चारणों की रचनाओं तक ही सीमित नहीं था। उस समय लोक साहित्य की क्षीण धारा भी सक्रिय थी जो सही अर्थ में देशभाषा काव्य थी। लौकिक साहित्य तीन क्षेत्रों में प्राप्त होते हैं- राजस्थान, दिल्ली और मिथिला इन तीन क्षेत्रों के साहित्य में उस काल की लोक संवेदना की थोड़ी बहुत झाँकी मिल सकती है। इस साहित्य के अंतर्गत भक्ति तथा श्रृंगार को लेकर काव्य रचना की गई। जनता के मनोरंजन हेतु झाँकियों तथा पहेलियों का सृजन किया गया। कुछ गद्य रचनाएँ भी होती रही थीं। लेकिन गद्य में उस वास्तविकता का वर्णन नहीं है जिसमें जीवन की यथार्थता को रचने की शक्ति होती है। आदिकाल में जो गद्य मिलता है वह व्याकरण और शास्त्र की सीमाओं में खंडन-मंडन तक ही सीमित है। इस काल की तीन उल्लेखनीय गद्य रचनाएँ हैं रोडा की कृति "राहुल खेल" दामोदर भट्ट की कृति "उक्ति व्यक्ति प्रकरण" और ज्योतिरीश्वर ठाकुर कृत 'वर्णरत्नाकर'।

3 <u>आदिकालीन साहित्य की प्रवृत्तियाँ-</u>

- <u>ऐतिहासिकता और कल्पना का मिश्रण</u>

  ऐतिहासिक काव्यों की रचना आदिकाव्य की एक प्रमुख विशेषता है। नवीं-दसवीं शताब्दी से लेकर चौदहवीं शताब्दी तक राजाओं को केंद्र में रखकर काव्य लिखने की प्रवृत्ति पाई जाती है। इन काव्यों में राजाओं की वीरता का वर्णन होता था। उनके द्वारा की गई लड़ाइयों का विस्तार से चित्रण किया जाता था। इसलिए इन काव्यों को वीरगाथात्मक काव्य भी कहा जाता है। रासो साहित्य के चरित-नायक ऐतिहासिक व्यक्ति हैं, किंतु आलोचकों के अनुसार इन काव्यों में ऐतिहासिक तथ्य कम हैं, कल्पना अधिक है। इन रासो काव्यों में जिन घटनाओं, नामावली, तिथियों का विवरण दिया गया है उनमें से अधिकांश इतिहास सम्मत नहीं हैं। इन कवियों का ध्यान ऐतिहासिक सत्य के उद्घाटन से अधिक काव्य निर्माण पर था।
- युद्ध वर्णन में सजीवता

रासोग्रंथों में किए गए युद्ध वर्णन सजीव प्रतीत होते हैं। इन काव्य ग्रंथों में जहां-जहां युद्ध वर्णन के प्रसंग हैं, वहां ऐसा प्रतीत होता है, जैसे कवि युद्ध का आंखों देखा हाल सुना रहा है। चारण कवि कलम के ही नहीं तलवारके भी धनी थे। अतः अवसर पड़ने पर आश्रयदाता के साथ वे युद्ध भूमि में भी जाते थे। युद्ध के दृश्यों को उन्होंने अपनी आंखों से देखा था। अतः इन काव्यों में युद्ध का जो वर्णन हुआ है वह उनकी वास्तविक अनुभूति पर आधारित है। इन कवियों के केवल सैन्य बल के ही नहीं अपितु योद्धाओं की उमंगों, मनोदशाओं एवं क्रियाकलापों के वर्णन में भी स्वाभाविकता दिखती है। इन वर्णनों में उन सभी वस्तुओं का विस्तृत वर्णन है जिनका उपयोग युद्ध में होता था। सेना के सेनापतियों के नाम और रूप तक का विवरण भी इन काव्यों में मिलता है। उदाहरण के लिए 'पृथ्वीराज रासो' में कवि

ने पृथ्वीराज चौहान की वीरता और पराक्रम का चित्रण किया है। तत्कालीन परिस्थितियों में युद्ध एक अनिवार्य आवश्यकता बन गई थी। अतः राजाओं को ऐसे व्यक्ति या वर्ग की आवश्यकता थी जो वीरों को युद्ध के लिए प्रोत्साहित कर सके। चारण कवि इसी आवश्यकता की पूर्ति करते थे। इनके योगदान की चर्चा करते हुए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है, "देश पर सब ओर से आक्रमण की संभावना थी। निरंतर युद्ध के लिए प्रोत्साहित करने को भी एक वर्ग आवश्यक हो गया था। चारण इसी श्रेणी के लोग थे। इनका कार्य ही था हर प्रसंग में आश्रयदाता के युद्धोन्माद को उत्पन्न कर देने वाली घटना योजना का आविष्कार।"

- **<u>संकुचित राष्ट्रीयता</u>**

इस काल में वीरता का वर्णन तो हुआ, परंतु भारत को एक राष्ट्र के रूप में देखकर राष्ट्रीय भावना का स्वर मुखरित नहीं हो पाया। आदिकालीन काव्य में राष्ट्रीय भावना का अभाव पाया जाता है। उस समय देश छोटे-छोटे राज्यों में बंटा हुआ था। इन राज्यों के शासक अपने इन छोटे राज्यों को ही राष्ट्र समझते थे। पड़ोसी राज्य पर विदेशी आक्रमण होने पर भी ये शासक विचलित नहीं होते थे। इसी संकुचित राष्ट्रीयता के कारण धीरे-धीरे सभी देशी राज्य विदेशी राजाओं द्वारा पददलित होते रहे। विदेशी आक्रांताओं के विरुद्ध संगठित होकर युद्ध करने में वे कभी सफल नहीं हुए। उनमें संपूर्ण भारत को एक राष्ट्र के रूप में देखने की भावना का अभाव था। यदि इन शासकों ने अपने क्षुद्र अहंभाव का परित्याग करके संगठित होकर विदेशियों का सामना किया होता तो देश को दीर्घ-अवधि तक विदेशी शासन झेलते हुए परतंत्र नहीं रहना पड़ता। आदिकालीन काव्य में इसी संकुचित राष्ट्रीयता की अभिव्यक्ति हुई है। चारण कवियों ने अपने आश्रयदाताओं के प्रशस्तिगान में ही समय बिता दिया। भारत को एक राष्ट्र के रूप में देखने की परिकल्पना उनके काव्यों में नहीं दिखती।

- <u>आश्रयदाताओं की प्रशंसा</u>

रासो ग्रंथों के रचयिता चारण कवि कहे जाते हैं। उनको राजाओं का आश्रय प्राप्त था। अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा करना वे अपनी काव्य रचना का ध्येय मानते थे। अपने चरित-नायक की श्रेष्ठता एवं प्रतिपक्ष राजा की हीनता का वर्णन अतिशयोक्तिपूर्ण ढंग से करना इन चारण कवियों की विशेषता थी। दरबारी कवि होने के कारण इन कवियों ने आश्रयदाता के शौर्य, यश, वैभव का काल्पनिक एवं अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन किया है। पृथ्वीराज रासो खुमाण रासो इसी कोटि की प्रशंसापरक काव्य-रचनाएं हैं। इनके कवि ने अपने चरित नायक को राम-कृष्ण, युधिष्ठिर, अर्जुन और हरिश्चंद्र से भी श्रेष्ठ बताते हुए प्रत्येक दृष्टि से उनकी महत्ता प्रतिपादित की है।

- <u>प्रामाणिकता में संदेश</u>

आदिकाल के अधिकांश रासो काव्यों की प्रामाणिकता संदिग्ध है। पृथ्वीराज रासो जो इस काल की प्रमुख रचना बताई गई है, वह भी अप्रामाणिक मानी गई है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार, "इसके अतिरिक्त और कुछ कहने की जगह नहीं कि यह पूरा ग्रंथ वास्तव में, जाली है।" इसी प्रकार खुमाण रासो और परमाल रासो की प्रामाणिकता में भी संदेह है। मूल कवि की रचना में अन्य लोगों ने कब और कितना अंश प्रक्षिप्त रूप से जोड़ दिया है इसका निर्णय कर पाना कठिन है। भाषा-शैली और विषय सामग्री के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि ये रासो काव्य समय-समय पर परिवर्तित होते रहे हैं।

- <u>वीर एवं श्रृंगार रस की प्रधानता</u>

रासो ग्रंथों में यद्यपि सभी रसों का समावेश हुआ है, तथापि इनमें वीर एवं श्रृंगार रस की प्रधानता परिलक्षित होती है। इन कृतियों में श्रृंगार तथा वीर दोनों रसों का सुंदर परिपाक हुआ है। उदाहरण के लिए, 'पृथ्वीराज रासो' में चरित नायक पृथ्वीराज चौहान के वीर योद्धा होने के वर्णन के साथ-साथ दूसरी ओर उनके रूप-सौंदर्य तथा प्रेम का सुंदर चित्रण भी किया गया है। वीरों में मनोभावे एवं अदम्य उत्साह का जैसा हृदयग्राही वर्णन रासो काव्य में किया गया है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। प्रेम के अंतर्गत रासो कवियों ने श्रृंगार रस के संयोग तथा वियोग दोनों पक्षों का सुंदर चित्रण किया है। नखशिख वर्णन, वियोग में नायिका का अपने प्रियतम के पास संदेश पहुंचाना, तथा विरह के अनेक रूपों का वर्णन इन काव्यों में हुआ है।

- संकुचित राष्ट्रीयता

इस काल में वीरता का वर्णन तो हुआ, परंतु भारत को एक राष्ट्र के रूप में देखकर राष्ट्रीय भावना का स्वर मुखरित नहीं हो पाया। आदिकालीन काव्य में राष्ट्रीय भावना का अभाव पाया जाता है। उस समय देश छोटे-छोटे राज्यों में बंटा हुआ था। इन राज्यों के शासक अपने इन छोटे राज्यों को ही राष्ट्र समझते थे। पड़ोसी राज्य पर विदेशी आक्रमण होने पर भी ये शासक विचलित नहीं होते थे। इसी संकुचित राष्ट्रीयता के कारण धीरे-धीरे सभी देशी राज्य विदेशी राजाओं द्वारा पददलित होते रहे। विदेशी आक्रांताओं के विरुद्ध संगठित होकर युद्ध करने में वे कभी सफल नहीं हुए। उनमें संपूर्ण भारत को एक राष्ट्र के रूप में देखने की भावना का अभाव था। यदि इन शासकों ने अपने क्षुद्र अहंभाव का परित्याग करके संगठित होकर विदेशियों का सामना किया होता तो देश को दीर्घ-अवधि तक विदेशी शासन झेलते हुए परतंत्र नहीं रहना पड़ता। आदिकालीन काव्य में इसी संकुचित राष्ट्रीयता की अभिव्यक्ति हुई है। चारण कवियों ने अपने आश्रयदाताओं के प्रशस्तिगान में ही समय बिता दिया। भारत को एक राष्ट्र के रूप में देखने की परिकल्पना उनके काव्यों में नहीं दिखती।

- <u>काव्य रूप</u>

रासो काव्य में प्रबन्ध एवं मुक्तक दोनों ही प्रकार के काव्य रूप द्रष्टव्य हैं। पृथ्वीराज रासो तथा विजयपाल रासो को प्रबन्ध काव्य की कोटि में रखा जाता है। इनका वर्ण्य विषय विस्तृत है तथा चरित नायक के संपूर्ण जीवन की कथा समेटे है। चन्दनबाला रास तथा सन्देश रासक एक खंड काव्य है। संदेश रासक में नायिका अपने प्रवासी पति को पथिक द्वारा संदेश भेजती है। गेय काव्य के अन्तर्गत "बीसलदेव रासो" का उल्लेख किया जाता है। इस कृति में आदि से अन्त तक एक ही छंद का प्रयोग किया गया है। "उपदेश रसायन रास" मुक्तक काव्य है। इसमें नीति तथा धर्मोपदेश के पद हैं। इनके अतिरिक्त लोकगीत शैली में परमाल रासो की रचना हुई। इस ग्रंथ के पदों को आल्हा गायक आज भी टोलियों में गाते हैं।

- <u>भाषागत विशेषताएँ-</u>

रासो काव्यों की भाषा वैविध्यपूर्ण है। यहाँ तक कि एक ही काव्य ग्रंथ में दो भिन्न प्रकार की भाषाओं का संगम दिखाई पड़ता है। इसका कारण यह है कि इन काव्यों में वीर रस के साथ-साथ शृंगार रस का भी सम्यक परिपाक हुआ है। अतः वर्णित स्थल के अनुरूप ही भाषा परिवर्तन भी स्वाभाविक रूप से हो गया है। इस युग में साहित्यिक राजस्थानी भाषा का प्रयोग "डिंगल" के नाम से काव्य में होता था तथा ब्रज मिश्रित भाषा के साहित्यिक रूप को "पिंगल" कहते थे। चारण कवियों ने वीरगाथात्मक रासो काव्यों की रचना "डिंगल" में की है क्योंकि वीर विषय की दृष्टि से यह भाषा अधिक उपयुक्त है। इस भाषा पर संस्कृत, अरबी, फारसी, प्राकृत, पंजाबी, ब्रज तथा अपभ्रंश का भी प्रभाव द्रष्टव्य है। उदाहरण के लिए "पृथ्वीराज रासो" की मूल भाषा पर ब्रज का प्रभाव स्पष्टतया दिखाई पड़ता है। आदिकालीन रासो साहित्य में जिस भाषा का प्रयोग किया गया है, वह आधुनिक हिन्दी से बहुत भिन्न है। अपभ्रंश और राजस्थानी भाषा के जिस मिले-जुले रूप का प्रयोग चारण कवियों ने रासो ग्रन्थों में किया है, उसे डिंगल नाम दिया गया है। इसी प्रकार तत्कालीन अपभ्रंश और ब्रजभाषा के मेल से बनी भाषा को पिंगल कहा जाता है, जिसका प्रयोग भी इन ग्रन्थों में किया गया है।.

<u>4 सारांश-</u>

हिन्दी साहित्य का आदिकालीन साहित्य एक व्यापक भाव दायरे में लिखा जाता रहा है। जितनी विस्तृत है इसकी क्षेत्रिय व्याप्ति उतना ही उसमें विषय विस्तार भी है। कथ्य, भाषा, शिल्प और छन्द सभी दृष्टियों से हिन्दी का आदिकालीन साहित्य समृद्ध है।

5. कीवर्ड्स (संकेत शब्द)- आदिकाल सिद्ध-साहित्य, जैन-साहित्य, नाथ-साहित्य, रासो साहित्य, लौकिक साहित्य, गद्यरचनाएं सिद्ध-साहित्य,लोकभाषा हिंदी

6 **अभ्यास- लघु उत्तरीयमूलक प्रश्न-**

1. चारण कवियों का प्रमुख कार्य क्या था?

2. डिंगल भाषा का प्रयोग आदिकाल के किस साहित्य के लिए हुआ है?

3. संकुचित राष्ट्रीयता से क्या तात्पर्य है?

4. किस कल के कवि कलम के ही नहीं तलवार के भी धनि थे?

7 दीर्घ उत्तरमूलक प्रश्न-

1. अदिकाल की प्रवृत्तियों का विस्तारमें वर्णन कीजिए।

2. आदिकालीन लौकिक साहित्य पर एक निबंध लिखिए।

3. 'पृथ्वी राज रासो 'का संक्षिप्त परिचय देते हुए, उसकी प्रामाणिकता सिद्ध कीजिए।

8 संदर्भ ग्रंथ सूची

* हिन्दी साहित्य दर्शन डॉ आनंद नारायण शर्मा

* हिन्दी साहित्य का इतिहास डॉ. आलोक कुमार रस्तोगी

* हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास डॉ गणपती चंद्र गुप्त, 1956

* हिन्दी साहित्य का विकास-१९७१, डॉ गणपती चंद्र गुप्त

* हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास डॉ चतुरसेन शास्त्री

* हिन्दी साहित्य एवं परिचय- डॉ. त्रिभुवन सिंह

BLOCK 4

आदिकाल के कवि और रचनाएं

Unit 4

इकाई की रूपरेखाः

उद्देश्य-

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप

- आदिकाल के प्रथम कवि एवं रचना से परिचित हो पाएंगे।

- आदिकालीन साहित्य की प्रमुख कवि एवं उनकी रचनाओं को जान पाएंगे।
- अमीर खुसरो एवं विद्यापति की साहित्यिक विशेषता की चर्चा कर पाएंगे।

1 प्रस्तावना

2 हिन्दी के प्रथम कवि

3 हिन्दी की प्रथम रचना

4 प्रमुख कवि और रचनाएं

5 जैन साहित्य

6 विद्यापतिः विशेष अध्ययन

7 सारांश

8 कीवर्ड्स (संकेत शब्द)

9 अभ्यास (लघु उत्तरीय मूलक प्रश्न)

10 दीर्घ उत्तरीयमूलक प्रश्न

11 संदर्भ ग्रंथ सूची

1 प्रस्तावना

हिन्दी साहित्य का आदिकाल विविध साहित्यिक प्रवृत्तियों के विकास का काल है। इस काल में अनेक साहित्यिक प्रवृत्तियाँ निर्मित हो रहीं थी और साहित्यिक भाषा भी एक नया रूप लेने लगी थी। इस काल में एक तरफ तो हमें सिद्धों, नाथों और जैन कवियों की रचनाएं मिलती हैं तो दूसरी ओर वीरता और शृंगार से परिपूर्ण रासो काव्या आदिकाल को भाषा का सन्धिकाल कहा जाता है। इस काल में अपभ्रंश में रचनाएँ हो रही थीं तो अपभ्रंश का परिवर्तित स्वरूप भी स्पष्ट दिखाई दे रहा था। मुक्तकों की रचना के साथ-साथ प्रबन्ध काव्यों का भी प्रणयन हो रहा था।

यह काल क्रमशः लोकोन्मुख होती हुई काव्य संवेदना और भाषा का काव्य है। इसी काल में हमें गद्य का स्वरूप निर्मित होते हुए भी दिखाई देता है।

2 हिन्दी के प्रथम कवि-

- राहुल सांकृत्यायनने 7 वीं शताब्दीके कवि सरहपाद को ही हिन्दी का पहला कवि माना है। सरहपाद 84 सिद्धों में से एक थे।
- डॉ. शिव सिंह सेंगर 7 वींशताब्दी के पुष्ययापुण्ड नामकव्यक्ति को हिन्दी का प्रथम कवि मानते हैं परन्तु, अभी तक उनकी कोई रचना उपलब्ध नहीं है।
- हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास' गणपति चन्द्रगुप्त ने इस सन्दर्भ में अपने के 'भरतेश्वर बाहुबली' में' रचयिता शालिभद्र सूरि को हिन्दी का प्रथम कवि माना है, जो तर्कसंगत नहीं है।
- सरहपाद की भाषा हिन्दी के निकट होने के कारण इसे ही हिन्दी का प्रथम कवि माना जाता है।

3 हिन्दी की प्रथम रचना

हिन्दी का प्रथम कवि सरहपाद को माना गया है परन्तु, उनकी कोई भी रचना उपलब्ध नहीं है। सरहपाद की जो भी रचनाएँ उपलब्ध हैंवे सभी मुक्तक हैं। अतः प्रथम रचना के नाम पर किसी भी एक पुस्तक को प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। आरम्भिक रचना की दृष्टि से काव्योत्कर्ष महत्त्वपूर्ण न होकर काव्य भाषा के रूप में किसी रचना में हिन्दी का प्रयोग महत्त्वपूर्ण बात है। हिन्दी का यह प्रयोग सरहपाद की रचनाओं में मिलता है। यदि एक ग्रन्थ के रूप में हिन्दी की रचना का निर्धारण करना हो तो सरहपाद के पश्चात् जैन आचार्य देवसेन कृत का नाम 'श्रावकाचार' 250 लिया जा सकता है। देवसेन ने इस ग्रन्थ में दोहों में श्रावक धर्म का वर्णन किया है। इस ग्रन्थ की रचना ई 933 हुई है। इसकी रचना दोहा छन्द में हुई है।

4 प्रमुख कवि और रचनाएं-

डोम्भिया : मगध के क्षत्रिय वंश में के लगभग इनका जन्म हुआ था। विरूपा से इन्होंने दीक्षा ली थी। ई 840 इनके द्वारा रचति इक्कीस ग्रंथ बताये जाते हैंआदि विशेष 'अक्षरद्विकोपदेश', 'योगचर्या', 'डोम्बिगीतिका' जिनमें, : प्रसिद्ध हैं। इनकी कविता का एक उदाहरण इस प्रकार है;गंगा जडना माझेरे बहर नाइ। तांहि बुडिली मातंग पोइआली ले पार करई। वाहतु डोम्बी याह लो डोंबी वाटत भइल उछारा। सगुरु पाऊ पए जाइब पुणु जिणउरा ॥

कण्हपा : इनका जन्म कर्नाटक के ब्राह्मणवंश में में हुआ था। बिहार के सोमपुरी स्थान पर ये रहते थे। ई 820 जालंधरमा को इन्होंने अपना गुरु बनाया था। कई सिद्धों ने इनकी शिष्यता स्वीकार की थी। इनके लिखे चौहत्तर ग्रंथ जिनमें अधिकांश दार्शनिक विषयों पर हैं। बताये जाते हैं रहस्यात्मक भावनाओं से परिपूर्ण गीतों की रचना करके

ये हिंदी के कवियों में प्रसिद्ध हुए। इन्होंने शास्त्रीय रूढ़ियों का भी खंडन किया है। इनकी कविता का एक उदाहरण देखिए:

आगम वेअ पुराणेपण्डित मान बर्हति।, पक्क सिरिफल अलिअजिम वाहेरित भ्रमयति ॥.

कुक्कुरिप्पाः इनका जन्म कपिलवस्तु के एक ब्राह्मणवंश में माना जाता है। इनके जन्मकाल का पता नहीं चल सका है। चपटीया इनके गुरु थे। इनके द्वारा रचित सोलह ग्रंथ माने जाते हैं। ये भी सहज जीवन के समर्थक थे। इनकी कविता का एक उदाहरण इस प्रकार है:

“हांड निवासी खमण भतारेमोहोर वि, गोआ कहण न जाइ। फेटलिड गो माए अन्त उड़ि चाहिजा एथु बाहाम, सोए नाहिं”।

इन कवियों ने हिंदी साहित्य में कविता की जो प्रवृत्तियां आरंभ कींउनका प्रभाव भक्तिकाल तक चलता रहा। इन सिद्ध कवियों की द, जो कबीर आदि की कविता में मिलता है रूढ़ियों के विरोध का अक्खड़पनन है। योगसाधना के क्षेत्र में भी इनका प्रभाव पहुंचा। सामाजिक जीवन के जो चित्र इन्होंने उभारेवे भक्तिकालीन काव्य, उसकी प्रेरणा के सूत्र भी के लिए सामाजिक चेतना की पीठिका बन गये। कृष्ण भक्ति के मूल में जो प्रवृत्ति मार्ग हैं हमें इनके साहित्य में मिलते है।'

<u>5 जैन साहित्य</u>

जिस प्रकार हिंदी के पूर्वी क्षेत्र में सिद्धों ने बौद्ध धर्म के वज्रयान मत का प्रचार हिंदी कविता के माध्यम से किया. उसी प्रकार पश्चिमी क्षेत्र में जैन साधुओं ने अपने मत का प्रचार हिंदी कविता के माध्यम से किया। जैन मतावलम्बी रचनाएँ दो प्रकार की हँसदाचार पर बल देते हैं, नीति, उपदेश मिद्धों की तरह अन्तस्माधना- जिनमें नाथों (1) - जैन साधकों की, जिनमें पौराणिक (2) और कर्मकाण्ड का खण्डन है। ये मुक्तक हैं और प्रायः दोहों में रचित हैं। प्रेरक जीवन कथा या लोक प्रचलित कथाओं को आधार बनाकर जैन मत का प्रचार किया गया है। जैन पौराणिक काव्य और चरितकाव्य इसी श्रेणी के काव्य हैं। जैन साहित्य की अधिकांश रचनाएँ अपभ्रंश साहित्य के अंग है जिनके बारे में आप अगली इकाई में पढ़ेंगे। लेकिन कुछ साहित्य अवश्य ऐसे हैं, जिन्हें हिंदी भाषा और साहित्य की रचना कहा जा सकता है। इन रचनाओं में कुछ का उल्लेख किया जा सकता है। शालिभद्र सूरि की रचना "भरतेश्वर बाहुबली रास (1884 ई.) असुग की कृति "चंदनबाला रास (1200 ई.) जिनधर्म सूरि कृत "स्थूलिभद्र रास (1209 ई.) विजय सेन सूरि की रचना "रेवन्तगिरिरास" (1231 ई.), सुमतिगण का "नेमिनाथ रास" जैसी कुछ साहित्यिक कृतियों को हिन्दी साहित्य में स्थान मिलना चाहिए। अब प्रश्न उठता है कि जैन रचनाओं के अध्ययन की क्या आवश्यकता है। प्रारंभिक हिंदी रचनाओं की सृजनात्मक अनुभूति को समझने के लिए

जैन साहित्य का अध्ययन अनिवार्य है क्योंकि जैन साहित्य उस हिंदी का अभिन्न अंग है। आचार्य शुक्ल अवश्य धार्मिक साहित्य के आधार पर जैन ग्रंथों को हिंदी से बाहर रखना चाहते हैं। धार्मिकता साहित्यिक संवेदना का अवरोधक तत्त्व नहीं है नहीं तो भक्तिकाल हिंदी साहित्य का स्वर्णयुग नहीं होता। प्रश्न केवल यह उठता है कि यह साहित्य अपने दृष्टिकोण में कितना प्रगतिशील है। धार्मिक मतवाद के बीच यह तलाश करने की आवश्यकता होती है कि उनमें मानवीय अनुभूतियों का कितना गहरा स्पर्श है। उसमें सामाजिक बोध और मानवीय गरिमा को पाने की क्षमता किस हद तक है। धार्मिक परत को हटाने के बाद उस साहित्य से जीवन का सौन्दर्य मिलता है या नहीं। यही हमारे साहित्यिक संवेदना को परखने तक आधार हो सकता है। भारतीय साहित्य में "महाभारत" जैसे महाकाव्य में धार्मिक जटिलता है लेकिन इसके साथ उसमें हमें मानवीय सच का गहरा बोध भी मिलता है। कहने का तात्पर्य यह है कि मानवीय अनुभूति ही साहित्य का आधार है। इसी से कलाकृति का सामाजिक मूल्य और जीवन मूल्य पहचाना जाता है। आदिकाल की परिधि में जो जैन साहित्य आता है उसमें धर्म मात्र प्रेरणा का विषय है। जैन साहित्य में भावों की जटिलता को मनोवैज्ञानिक रूप में चित्रित किया गया है। मानव के विविध भावों के बीच जो अंतर्द्वन्द्व चलता है, उसका सूक्ष्मता से विश्लेषण मिलता है।

6विद्यापतिः विशेष अध्ययन

विद्यापति का रचनाकाल चौदहवीं शताब्दी है। उस काल की देशभाषा को अपभ्रंश में मिलाकर रचने की प्रवृत्ति प्रचलित थी विद्यापति ने भी इन रूढ़ियों का पालन कियाभी परंतु उनके काव्य में देशभाषा का स्वतंत्र विकास, देखने को मिलता है। अपभ्रंश मिश्रित लोकभाषा जिसे विद्यापति ने अवहट्ट कहा है तथा मिथिलांचल प्रदेश में प्रचलित लोकभाषा मैथिली दोनों ही भाषाओं में विद्यापति ने रचना की विद्यापति की स्पष्ट मान्यता थीदेसिल बअना सब जनमिड्डा ते तैसन जपऊ अवहट्ठा। अर्थात् देशी भाषा सबको मीठी लगती हैइससे वैसा ही अपभ्रंश में कहता हूँ। उन्होंने कीर्तिलता और कीर्तिपताका अपभ्रंश या अवहट्ट में लिखा विद्यापति की भाषा में लोक अनुभूति का आधार इतना गहरा था कि उससे उनकी अवहट्ट रचनाएँ भी प्रभावित हुई। उस अपभ्रंश की विशेषता यह है कि उसमें देशभाषा का कुछ अधिक प्रभाव है। यह अपभ्रंश भाषा प्राकृत की रूढ़ियों से बंधी हुई प्रतीत नहीं होती। वस्तुतः विद्यापति के सामने कविता को दो धाराएं थीं एक प्राचीन मैथिली की और दूसरी उत्तरकालीन अवहट्ट की विद्यापति ने दोनों प्रकार की भाषाओं को मिलाकर एक नई शैली की उद्भावना की विद्यापति के शृंगार वर्णन की बहुत बड़ी विशेषता है कि उन्होंने अपने शृंगार वर्णन को सामंती शृंगार के सौंदर्य के उपभोग पक्ष से अलग रखा है। उनके शृंगारिक मनोभाव में लोकजीवन की सहजता है। उनके काव्य में किशोर और किशोरियों के प्रेम का सहज आकर्षण हैंनवयौवन को चंचलता है और भावों की ऊहापोह है।, मिथिला में विद्यापति ने जिस तान को छोड़ा उसका प्रभाव मिथिला में ही सीमित न होकर असमओडिशा तक जा पहुँचा। वस्तुतः मिथिला पूर्वी बंगाल संस्कृति का केन्द्र था मिथिला में गीतिकाव्य और दर्शन की दो धाराएँ एक साथ प्रवाहित हो रही थीं। विद्यापति का संबंध इन दो धाराओं से

था पूरव के लोग मिथिला में पढ़नेथे। जब वे लिखने और कार्य करने आते-लौटते तो अपने साथ मिथिला के गीत और भजन भी ले जाते थे। इसी तरह से विद्यापति की कविताओं का प्रसार असम, बंगाल और ओदिशा में हुआ मैथिली कोकिल को लयात्मक चेतना और गीतात्मक संवेदना से संपूरण पूर्वी भारत आनंदित हो उठा।

एक उदाहरण-

“नंदक नंदन कदम्बक तर तरे

धीरेधीरे मुरली बजाय-

समय संकेत निकेतन वैसल

बेरिबेरि बोलि पठाव”

7 सारांश

जन-जीवन के साथ घुल-मिलकर काव्य रचना करने वाले कवियों में खुसरो का स्थान सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने जनता के मनोरंजन के लिए पहेलियाँ और मुकरियाँ लिखी थीं। आदिकाल में खड़ीबोली को काव्य कीभाषाबनाने वाले वे पहले कवि हैं। विद्यापति को आचार्य शुक्ल ने फुटकल कवियों में रख दिया है, किन्तु आदिकाल के ये सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कवि हैं। विद्यापति ने तीन भाषाओं में साहित्य लिखा संस्कृत, अपभ्रंश के एक रूप अवहट्ट और लोकभाषा मैथिली। विद्यापति को अपभ्रंश साहित्य का अन्तिम महत्त्वपूर्ण कवि और हिन्दी साहित्य का प्रथम महत्त्वपूर्ण कवि कहा जा सकता है।

8 कीवर्ड्स (संकेत शब्द)- आदिकाल, साहित्यिक प्रवृत्तियों, सिद्धों, नाथों, जैन वीरता, रासो काव्य, काव्य संवेदना

9 अभ्यास (लघु उत्तरीयमूलक प्रश्न)

1. आदिकाल का प्रथम कवि राहुल सांकृत्यायन ने किसे माना? 2. आदिकाल में रचित हिंदी का प्रथम महाकाव्य कौन सा है?

3. बीसलदेव रासो के रचयिता का नाम क्या है?

4. विद्यापति पदावली की रचना किस भाषा में हुई है?

5. आदिकाल के उस कवी का नाम बताइए जो खड़ीबोली में काव्य रचना करता था।

10 दीर्घ उत्तरमूलक प्रश्न

1. अमीर खुसरो के काव्य पर विस्तृत समीक्षात्मक टिपण्णी प्रस्तुत कीजिए।

2. विद्यापति तथा अमीर खुसरो पर सिंक्षिप्त टिप्पणियाँ प्रस्तुत कीजिए।

3. आदिकाल में लिखे गए प्रमुख रासो ग्रन्थ का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

4. आदिकालीन धार्मिक साहित्य का वर्गीकरण करते हुए इसके महत्व पार प्रकाश डालिए।

11 संदर्भ ग्रंथ सूची

* हिन्दी साहित्य दर्शन डॉ आनंद नारायण शर्मा

* हिन्दी साहित्य का इतिहास डॉ. आलोक कुमार रस्तोगी

* हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास डॉ गणपती चंद्र गुप्त, 1956

* हिंदुई साहित्य का इतिहास डॉ गणपती चंद्र गुप्त, 1950

BLOCK 5

प्रमुख रासो काव्य

Unit-5:

इकाई की रूपरेखाः-

उद्देश्य- इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

• हिंदी साहित्य के प्रमुख रासो ग्रन्थों से परिचित हो सकेंगे।

• रासो काव्य के इतिहास और उद्भव का महत्व बता सकेंगे।

• रासो काव्य की भाषा और शैली से परिचित हो पाएंगे।

1. प्रस्तावना
2. रासो काव्य का परिचय
3. रासो काव्य का महत्व और प्रभाव
4. प्रमुख रासो काव्य
5. कीवर्ड्स (संकेत शब्द)
6. अभ्यास (लघु उत्तरीय मूलक प्रश्न)
7. दीर्घ उत्तरीयमूलक प्रश्न
8. संदर्भ ग्रंथ सूची

1.प्रस्तावना- हिन्दी साहित्य का आरम्भिक काल 'आदिकाल' के नाम से जाना जाता है। साहित्य के अलग-अलग कालों में अलग-अलग काव्य परम्पराएँ विकसित होती रहती हैं। आदिकाल भी इसका अपवाद नहीं है। इस कालखण्ड में अनेक साहित्यिक परम्पराएँ विकसित हुईं, पर जो काव्य परम्परा विशेष रूप से चर्चित हुई, उसे रासो काव्यधारा के नाम से जाना जाता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने रासो काव्य परम्परा के कारण इस काल को वीरगाथा काल के नाम से भी अभिहित किया। 'रासो' शब्द का वास्तविक अर्थ क्या है, इसके सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। यह मतभेद नया नहीं पुराना है। किसी ने 'रासो' शब्द की उत्पत्ति राजसूय से मानी है, तो किसी ने रसायन, रहस्य, राजयश, रासक, रास आदि शब्दों से। ऐसा लगता है कि 'रासो' का सम्बन्ध 'रास' शब्द से है। रास रचाने कि क्रिया का वर्णन हमें श्रीमद्भागवत से ही मिलने लगता है। रास में नृत्य और गीत प्रधान होते हैं। 'रासो' एक परम्परागत काव्य रूप है। ऐसा

काव्यरूप जिसका सम्बन्ध नृत्य और गीत से रहा है। इस परम्परा का विकास संस्कृत या अन्य किसी परम्परा से न होकर अपभ्रंश की परम्परा में हुआ है हिंदी साहित्य में प्रमुख रासो काव्य (या रासो साहित्य) वीरगाथा काल के महत्वपूर्ण रचनाएं मानी जाती हैं। ये काव्य मुख्यतः राजाओं, वीरों, और वीरांगनाओं की वीरता, शौर्य, और बलिदान का वर्णन करते हैं। रासो काव्य हिंदी साहित्य के वीरगाथा काल की महत्त्वपूर्ण रचनाएं हैं और इन्हें पढ़कर उस समय के समाज, संस्कृति, और इतिहास की महत्वपूर्ण जानकारियाँ मिलती हैं। ये काव्य अपने समय की वीरता, आदर्शों, और संघर्षों का अद्भुत चित्रण करते हैं। हिंदी साहित्य में रासो काव्य एक विशेष प्रकार की काव्य शैली है, जो मुख्य रूप से वीरगाथा काल के दौरान प्रचलित थी। यह काव्य शैली 10वीं से 14वीं शताब्दी के बीच फली-फूली । रासो काव्य को वीरगाथा काल के प्रमुख साहित्यिक धरोहर के रूप में माना जाता है।

2.रासो काव्य का परिचय- रासो काव्य हिन्दी के आदिकाल में रचित ग्रन्थ हैं। ये अधिकतर वीर-गाथाओं से सबंधित होती हैं। पृथ्वीराजरासो प्रसिद्ध हिन्दी रासो काव्य है। रास साहित्य चारण परम्परा से संबंधित है तो रासो का संबंध अधिकांशत: वीर काव्य से, जो डिंगल भाषा में लिखा गया । रासो काव्य मुख्यतः युद्धों, राजाओं के वीरतापूर्ण कार्यों, और उनकी विजय गाथाओं का वर्णन करते हैं।

- इनमें राष्ट्रभक्ति, वीरता, बलिदान, और शौर्य की भावनाओं को प्रमुखता दी जाती है।
- इन काव्यों में नायक की वीरता और महानता को महिमामंडित किया जाता है, जिससे राजाओं और योद्धाओं की प्रतिमाओं को आदर्श रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

- **<u>रासो काव्य का महत्व और प्रभाव</u> -**

रासो काव्य ने हिंदी साहित्य को समृद्ध किया और वीरगाथा काल के साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान बनाया।

- ये काव्य राजपूत काल की संस्कृति, समाज, और राजनीति को समझने के लिए महत्वपूर्ण स्रोत हैं।
- रासो काव्य ने राष्ट्रभक्ति और वीरता की भावनाओं को प्रोत्साहित किया और समाज में वीरता के आदर्शों को प्रतिष्ठित किया।
- रासो काव्य ने उस समय की वीरता, शौर्य, और संस्कृति को जीवंत रूप में प्रस्तुत किया।
- रासो काव्य परम्परा हिन्दी साहित्य की एक विशिष्ट काव्यधारा रही है, जो वीरगाथा काल में उत्पन्न होकर मध्य युग तक चली आई। कहना यों चाहिए कि आदि काल में जन्म लेने वाली

इस विधा को मध्यकाल में विशेष पोषण मिला। पृथ्वीराज रासो' से प्रारम्भ होने वाली यह काव्य विधा देशी राज्यों में भी मिलती है। तत्कालीन कविगण अपने आश्रयदाताओं को युद्ध की प्रेरणा देने के लिए उनके बल पौरुष आदि का अतिरंजित वर्णन इन रासो काव्यों में करते रहे हैं।

- रासो काव्य परम्परा में सर्वप्रथम ग्रन्थ "पृथ्वीराज रासो' माना जाता है। संस्कृत, जैन और बौद्ध साहित्य में "रास', "रासक' नाम की अनेक रचनायें लिखी गईं। गुर्जर एवं राजस्थानी साहित्य में तो इसकी एक लम्बी परम्परा पाई जाती है।
- यह निर्विवाद सत्य है कि संस्कृत काव्य ग्रन्थों का हिन्दी साहित्य पर बहुत प्रभाव पड़ा। संस्कृत काव्य ग्रन्थों में वीर रस पूर्ण वर्णनों की कमी नहीं है। ऋगवेद में तथा शतपथ ब्राह्मण में युद्ध एवं वीरता सम्बन्धी सूक्त हैं। महाभारत तो वीर काव्य ही है। यहीं से सूत, मागध आदि द्वारा राजाओं की प्रशंसा का सूत्रपात हुआ जो आगे चलकर भाट, चारण, ढुलियों आदि द्वारा अतिरंजित रुप को प्राप्त कर सका। वीर काव्य की दृष्टि से "रामायण' में भी युद्ध के अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन हैं।
- रासो परम्परा दो रुपों में मिलती है-प्रबन्ध काव्य और वीरगीत। प्रबन्ध काव्य में "पृथ्वी राज रासो' तथा वीर गीत के रुप में "वीसलदेव रासो' जैसी रचनायें हैं। जगनिक का रासो अपने मूल रुप में तो अप्राप्त है किन्तु, आल्ह खण्ड' नाम की वीर रस रचना उसी का परिवर्तित रुप है। आल्हा, ऊदल एवं पृथ्वीराज की लड़ाइयों से सम्बन्धित वीर गीतों की यह रचना हिन्दी भाषा क्षेत्र के जनमानस में गूंज रही है।
- आदि काल की प्रमुख रचनायें पृथ्वीराज रासो, खुमान ख्रासो एवं वीसलदेव रासो हैं। हिन्दी साहित्य के प्रारम्भ काल की ये रचनायें वीर रस एवं श्रृंगार रस का मिला-जुला रुप प्रस्तुत करती हैं।
- जैन साहित्य में "रास' एवं "रासक' नम से अभिहित अनेक रचनायें हैं जिनमें सन्देश रासक, भरतेश्वर बाहुबलि रास, कच्छूलिरास आदि प्रतिनिधि हैं।
- आदि काल की बहुत सी रचनायें तो अनुपलब्ध ही हैं। संकेत सूत्रों के आधर पर सूचना मात्र मिलती है अथवा काल क्रमानुसार कुछ रचनाओं का रुप ऐसा परिवर्तित हो गया है कि उनके मूल रुप का अनुमान भी लगाना कठिन हो गया है। "पृथ्वीराज रासो' जैसी वहदाकार रचनाओं की ऐतिहासिकता संदिग्ध है। उसकी तिथियों, घटनाओं आदि के विषय में विद्वानों में मतभेद हैं।
- पृथ्वीराज रासो एवं वीसलदेव रासो को कुछ विद्वान सोलहवीं एवं सत्रहवीं शताब्दी की रचना मानते हैं। डॉ. माताप्रसाद गुप्त इन्हें १३ वीं १४ वीं शताब्दी का मानते हैं।
- यह रासो परम्परा हिन्दी के जन्म से पूर्व अपभ्रंश में वर्तमान थी तथा हिन्दी की उत्पत्ति के साथ'साथ गुर्जर साहित्य में।

- अपभ्रंश में "मु"जरास' तथा "सन्देश रासक' दो रचनायें हैं। इनमें से मुंजरास अनुपलब्ध है। केवल हेमचन्द्र के "सिद्ध हेम' व्याकरण ग्रन्थ में तथा मेरु तुंग के प्रबन्ध् चिन्तामणि में इसके कुछ छन्द उद्धृत किए गये हैं। डॉ. माता प्रसाद गुप्त "मुंजरास' की रचना काल १०५४ वि. और ११९७ वी. के बीच मानते हैं, क्योंकि मुंज का समय १००७ वि. से १०५४ वि. का है। "संदेश रासक' को विद्वानों ने १२०७ वि. की रचना माना है। पृथ्वीराज रासो की तरह "मुंजरास' एवं "संदेश रास भी प्रबन्ध रचनायें हैं। पृथ्वीराज रासो दुखान्त रचना है। वीसलदेव रासो सुखान्त रचना है एवं इसी तरह "संदेश रासकद्' सुखान्त एवं "मुंजरास' दुखान्त रचनायें हैं।
- अपभ्रंश काल की एक और रचना जिन्दत्त सूरि का "उपदेश रसायन रास' है। यह भक्ति परक धार्मिक रचना है। डॉ. माता प्रसाद गुप्त जिनदत्त सूरि का स्वर्गवास सं. १२९५ वि. में मानते हैं। अतः रचना सं. १२९५ वि. के कुछ पूर्व की ही होनी चाहिए। अपभ्रशं की उपर्युक्त रचनायें रासो काव्य की मुख्य प्रवृत्तियों की पूर्ण अभिव्यक्ति नहीं करतीा
- गुर्जर साहित्य में लिखी रासो रचनायें आकार में छोटी हैं। इनके रचयिता जैन कवि थे और उन्होंने इनकी रचना जैन धर्म सिद्धान्तों के अनुसार की।
- सर्वप्रथम "शालिभ्रद सूरि' की "भरतेश्वर बाहुबलि रास' एवं "वद्धि रास' रचनायें उपलब्ध होती है। "भरतेश्वर बाहुबलि रास' राजसत्ता के लिए हुआ भरतेश्वर एवं बाहुबलि का संघर्ष है जो जैन तीथरंकर स्वामी ऋषभदेव के पुत्र थे। इसकी रचना वीर रस में हुई है। "बुद्धि रास' शान्त रस में लिखा गया उपदेश परक ग्रन्थ है।
- **<u>प्रमुख रासो काव्य</u>**-

<u>पृथ्वीराज रासो</u>- *पृथ्वीराज रासो* की रचना कवि चन्दबरदाई ने की है। यह हिन्दी का प्रथम महाकाव्य है। माना जाता है कि दिल्ली नरेश पृथ्वीराज और चन्दबरदाई समकालीन थे। कहा तो यह जाता है कि ये दोनों एक ही दिन पैदा हुए थे। जो भी हो, ऐसा लगता है कि दोनों बाल सखा थे। *पृथ्वीराज रासो* एक विशाल ग्रन्थ है। इसके कई संस्करण प्रकाशित हैं। *पृथ्वीराज रासो* के मूल आकार-प्रकार को लेकर विद्वानों में मतभेद है। काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकासित *पृथ्वीराज रासो* की कथा 69 समयों (सर्गों) में विभक्त है। दो खण्डों के इस ग्रन्थ में लगभग 2400 पृष्ठ हैं। माताप्रसाद गुप्त ने *पृथ्वीराज रास3* का सम्पादन केवल बारह सर्गों में किया है। इसी तरह *पृथ्वीराजरासो* का संक्षिप्त संस्करण भी आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी और नामवर सिंह ने तैयार किया है और कहा है कि मूल ग्रन्थ यही है। दरअसल, पृथ्वीराज रासो एक विकसनशील महाकाव्य है जिसका लेखन अलग-अलग कालों में अलग-अलग व्यक्तियों द्वारा हुआ है। रासो काव्यधारा में पृथ्वीराज रासो प्रकाश स्तम्भ की भाँति है। इसका कथानक राजपूत नरेशों और सामन्तों की वीरता, शौर्य सम्पन्न विजयों और पराक्रमपूर्ण गौरवगाथा से अनुस्यूत है।

पृथ्वीराज रासो के नायक हिन्दू सम्राट पृथ्वीराज चौहान हैं। कवि ने इस रचना में पृथ्वीराज चौहान के विवाह, विजय, युद्धों और आखेट वर्णनों का बड़ा ही सुन्दर चित्र खींचा है। इस ग्रन्थ में वीर और शृंगार रस का अद्भुत समन्वय हुआ है। पृथ्वीराज रासो के यृद्ध वर्णन, सेना वर्णन और आखेट वर्णन में वीर रस की प्रधानता है और पृथ्वीराज के विवाहों के वर्णन में शृंगार रस की प्रधानता है। पृथ्वीराज और संयोगिता के प्रेमवर्णन तथा विवाह वर्णन में कवि का मन खूब रमा है। भारत के महान वीर, अदम्य उत्साही और यशस्वी सम्राट पृथ्वीराज के यश का गान इस कृति का मूल उद्देश्य है। रासो काव्य परम्परा का यह सर्वश्रेष्ठ और महत्त्वपूर्ण काव्य है। इस ग्रन्थ की प्रामाणिकता, ऐतिहासिकता, भाषा आदि अनेक पक्षों पर विचार करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है - "भाषा की कसौटी पर यदि ग्रन्थ को कसते हैं, तो और भी निराश होना पड़ता है, क्योंकि वह बिलकुल बेठिकाने है - उसमें व्याकरण आदि की कोई व्यवस्था नहीं है। दोहों की और कुछ-कुछ कवित्तों (छप्पयों) की भाषा तो ठिकाने की है, पर त्रोटक आदि छोटे छन्दों में तो कहीं-कहीं अनुस्वारान्त शब्दों की ऐसी मनमानी भरमार है, जैसे कि संस्कृत, प्राकृत कि नकल की हो। कहीं कहीं तो भाषा आधुनिक साँचे में ढली-सी दिखाई पड़ती है, क्रियाएँ नए रूपों में मिलती हैं, पर साथ ही कहीं कहीं भाषा अपने असली प्राचीन साहित्यिक रूप में भी पाई जाती है, जिसमें प्राकृत और अपभ्रंश शब्दों के साथ-साथ शब्दों के रूपों और विभक्तियों के चिह्न पुराने ढंग के हैं। इस दशा में भाटों के इस वाग्जाल के बीच कहाँ पर कितना अंश असली है, इसका निर्णय असम्भव होने के कारण, यह ग्रन्थ न तो भाषा के इतिहास के और न साहित्य के जिज्ञासुओं के काम का है। पृथ्वीराज रासो की भाषा ब्रज और राजस्थानी मिश्रित है, जिससे यह सरल, सुबोध और प्रभावी बन गई है। काव्य शैली में अतिशयोक्ति, उपमा, और अलंकारों का व्यापक प्रयोग है। वीर रस का प्रधानता है, जिससे नायक की वीरता और शौर्य को प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किया जा सके। पृथ्वीराज रासो वीरगाथा काल की एक अनमोल धरोहर है। चन्दबरदाई द्वारा रचित इस महाकाव्य ने न केवल पृथ्वीराज चौहान की वीरता को अमर कर दिया, बल्कि उस समय के राजपूत समाज के आदर्शों, मूल्यों और संघर्षों को भी जीवंत रूप में प्रस्तुत किया है। यह काव्य आज भी हिंदी साहित्य के प्रेमियों के लिए प्रेरणा का स्रोत है और वीरता के आदर्शों का प्रतीक है।

बीसलदेव रासो-

बीसलदेव रासो: बीसलदेव रासो के रचयिता का नाम नरपति नाल्ह है। पाठ के अनुसार ग्रंथ की रचना संवत् 1212 अर्थात् 1155 में हुई थी। किंतु श्री मोतीलाल मेनारिया के अनुसार, इसकी रचना सोलहवीं शताब्दी में हुई होगी। बीसलदेव रासो में शाकंभरी नरेश बीसलदेव और भोज परमार की पुत्री राजमती के विवाह, वियोग और पुनर्मिलन का वर्णन है। यह प्रधानतः शृंगारी काव्य है। बीसलदेव रासो में हिंदी काव्य में प्रयुक्त होने वाले 'बारहमासा' का वर्णन सबसे पहले मिलता बीसलदेव रासो के चार खण्ड है-

- (१) **प्रथम खण्ड**- मालवा के परमार भोज की पुत्री राजमती से शाकम्भरी-नरेश बीसलदेव (विग्रहराज) के विवाह का वर्णन,

- (२) **द्वितीय खण्ड**- बीसलदेव का राजमती से रूठकर उड़ीसा जाना,

- (३) **तृतीय खण्ड खण्ड** - राजमती का विरह-वर्णन

- (४) **चतुर्थ** - भोजराज द्वारा अपनी पुत्री को वापस ले आना; बीसलदेव को वहाँ से चित्तौड़ लाने का प्रसंग।

लेकिन यहाँ ऐतिहासिक दृष्टि से असंगति दिखती है क्योंकि भोज एवं बीसलदेव में लगभग 100 वर्षों का अंतर है। बीसलदेव से सौ वर्ष पहले ही धार के प्रसिद्घ राजा भोज का देहांत हो गया था। बीसलदेव की एक परमार वंश की रानी थी,यह बात परमपरा से अवश्य चली आती थी, क्योंकि इसका उल्लेख पृथ्वीराजरासो में भी है। यह भी हो सकता है कि धार के परमारों की उपाधि ही भोज हो। आबू के परमार भी राजपूतानो में फैले हुए थे। अतः राजमती इनहि में से किसी की कन्या हो। दिये गए संवत पर विचार से कवि बीसलदेव का समसामयिक लगता है। इस काव्य में वीर और श्रृंगार का अच्छा मेल है। इसमें श्रृंगार ही प्रधान रस है,वीर रस केवल आभास मात्र है। श्रृंगार रस की दृष्टि से विवाह और रूठकर विदेश जाने का मनमाना वर्णन है। यह घटनात्मक काव्य नहीं,वर्णात्मक काव्य लगती है। इसकी भाषा को देखते हैं तो वह साहित्यिक नहीं राजस्थानी है। साहित्य की सामान्य भाषा हिन्दी है ही थी जो "पिंगल' भाषा कहलाती थी। गेय काव्य होने के कारण इसकी भाषा में भी बहुत कुछ फेरफार हुआ है

4.**परमाल रासो-** यह आदिकालीन हिंदी साहित्य की एक वीरगाथात्मक रासो काव्य है, आज के समय में परमाल रासो का केवल एक आल्हाखंड ही उपलब्ध है, हालांकि इस रचना के काल के विषय में काफी मतभेद हैं, कहीं पर से 12वीं शताब्दी तो कहीं पर 16वीं शताब्दी की रचना कहा जाता परमाल रासो एक विवादास्पद कृति है। यह कृति 36 खण्डों में विभाजित है और महोबा के दो वीरों आल्हा और ऊदल से सम्बन्धित प्रचलित किंवदन्तियों के आधार पर लिखी गई है। इस कृति का न तो साहित्यिक महत्त्व है और न ही ऐतिहासिक। परमाल रासो आदिकालीन हिंदी साहित्य का प्रसिद्ध वीरगाथात्मक रासोकाव्य है। वर्तमान समय में इसका केवल आल्ह खंड उपलब्ध है जो वीरगाथात्मक लोकगाथा के रूप में उत्तर भारत में बेहद लोकप्रिय रहा है हिंदी साहित्य के वीरगाथा काल का एक महत्वपूर्ण काव्य है जो महोबा के राजा परमाल और उनके वीर सेनापतियों आल्हा-ऊदल की गाथाओं को अमर करता है। जगनिक द्वारा रचित इस काव्य ने न केवल उन वीरों की वीरता को अमर किया बल्कि उस समय के राजपूत समाज के आदर्शों, मूल्यों और संघर्षों को भी जीवंत रूप में प्रस्तुत किया है। यह काव्य आज भी वीरता और शौर्य की प्रेरणा का स्रोत है और हिंदी साहित्य में इसका विशेष स्थान है।

खुमाण रासो- 'खुमाण रासों' के रचयिता दलपति विजय हैं। इस ग्रंथ की प्रामाणिक हस्तलिखित प्रति पूना के संग्रहालय में सुरक्षित हैं। यह पांच हजार छंदों का विशाल काव्य ग्रंथ है। इसका रचनाकाल 17 वीं शताब्दी माना जाता है। खुमाण रासो की कुछ प्रतियाँ ऐसी मिली हैं जिनमें राणा संग्राम सिंह द्वितीय तक का उल्लेख है। संग्राम सिंह का शासनकाल (वि. 1767-90) माना जाता है। यह रचना अठारहवीं

शताब्दी वि. के अन्त की है। इस ग्रन्थ में मेवाड़ के सूर्यवंश की महत्ता का वर्णन किया गया है। यह काव्य मेवाड़ के महान राजा खुमान की वीरता, उनके युद्धों, और उनके शासनकाल का विस्तृत वर्णन करता है। राजा खुमान अपने समय के प्रख्यात योद्धा और मेवाड़ के गौरवशाली इतिहास के प्रतीक थे। इस काव्य ने न केवल राजा खुमान की वीरता को अमर किया बल्कि उस समय के राजपूत समाज के आदर्शों, मूल्यों और संघर्षों को भी जीवंत रूप में प्रस्तुत किया है। यह काव्य आज भी वीरता और शौर्य की प्रेरणा का स्रोत है और हिंदी साहित्य में इसका विशेष स्थान है।

<u>हम्मीर रासो-</u>

हम्मीर रासो हिन्दी का एक रासो ग्रन्थ है। इसके रचयिता शारंगधर है। इसमें रणथंभौर के राणा हम्मीर का चरित्र वर्णन है। छन्द संख्या लगभग ३०० है। हिंदी साहित्य के वीरगाथा काल का एक महत्वपूर्ण काव्य है, जिसकी रचना कवि जयानक ने की थी। यह काव्य रणथंभौर के महान राजा हम्मीरदेव (हमीर) की वीरता, उनके युद्धों, और उनके शासनकाल का विस्तृत वर्णन करता है। राजा हम्मीरदेव अपने समय के प्रख्यात योद्धा और अपने अदम्य साहस के लिए प्रसिद्ध थे। हम्मीर रासो ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण काव्य है, क्योंकि यह 13वीं शताब्दी के रणथंभौर के राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिवेश को समझने में मदद करता है। यह काव्य उस समय के राजपूतों की वीरता और उनके संघर्षों का अद्वितीय दस्तावेज है। हम्मीर रासो हिंदी साहित्य के वीरगाथा काल का एक महत्वपूर्ण काव्य है जो रणथंभौर के महान राजा हमीर की वीरता और उनके शासनकाल को अमर करता है। जयानक द्वारा रचित इस काव्य ने न केवल राजा हमीर की वीरता को अमर किया बल्कि उस समय के राजपूत समाज के आदर्शों, मूल्यों और संघर्षों को भी जीवंत रूप में प्रस्तुत किया है। यह काव्य आज भी वीरता और शौर्य की प्रेरणा का स्रोत है और हिंदी साहित्य में इसका विशेष स्थान है।हिन्दी साहित्य में *हम्मीर रासो* नामक दो ग्रन्थों का उल्लेख मिलता है। एक शारंगधर कृत और दूसरी जोधराज कृत। यहाँ हम जोधराज कृत *हम्मीर रासो* की चर्चा कर रहे हैं। इस ग्रन्थ में हम्मीर का वीर चरित्र विस्तार से वर्णित हुआ है। इस ग्रन्थ में वीर रस की प्रधानता है और अनेक अनैतिहासिक तथ्यों का समावेश है। इसमें उल्लिखित है कि हम्मीर के आत्मघात के पश्चात अलाउद्दीन समुद्र में कूदकर प्राण दे देता है, यह इतिहास सम्मत नहीं है। इस कृति की छन्द संख्या लगभग एक हजार है।

<u>5.कीवर्ड्स (संकेत शब्द)-</u> - हिन्दी साहित्य, आरम्भिक काल, आदिकाल, रासो काव्यधारा, वीरगाथा काल, हम्मीर

6.अभ्यास (लघु उत्तरीय मूलक प्रश्न)

- **: हमीर रासो में किस राजा की वीरता का वर्णन है?**
- **नरपति नाल्ह किस प्रकार का काव्य है और इसके रचनाकार कौन हैं?**
- **रासो काव्य की भाषा क्या होती थी?**
- **रासो काव्य में किस रस की प्रधानता होती है?**
- **रासो काव्य का ऐतिहासिक महत्व क्या है?**

7.दीर्घ उत्तरीयमूलक प्रश्न-

• पृथ्वीराज रासो का मुख्य विषय क्या है और इसमें कौन-कौन से घटनाक्रम शामिल हैं?

• परमाल रासो के रचयिता कौन हैं और इस काव्य में किसी वीर योद्धा के जीवन का वर्णन किया गया है?

• खुमान रासो में किस राजा की वीरता का वर्णन किया गया है और इसकी महत्ता क्या है?

• हमीर रासो का मुख्य सन्देश क्या है और इसमें किस राजा की कथा का वर्णन किया गया है?

• नरपति नाल्ह के रचयिता कौन हैं और इस काव्य का मुख्य विषय क्या है?

8. संदर्भ ग्रंथ सूची-

* हिन्दी साहित्य दर्शन डॉ आनंद नारायण शर्मा

* हिन्दी साहित्य का इतिहास डॉ. आलोक कुमार रस्तोगी

* हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास डॉ गणपती चंद्र गुप्त, 1956

* हिंदुई साहित्य का इतिहास डॉ गणपती चंद्र गुप्त, 1950

* हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास डॉ चतुरसेन शास्त्री